इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ७ अंक ३ आश्विन मास कलियुगाब्द ५११६ अक्तूबर २०१४

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्य:
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की प्रवृत्तियां (भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में)	डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल	३
कांग्रेस और संघ स्वराज से पूर्ण स्वातन्त्र्य तक की यात्रा	कृष्णानन्द सागर	२०
वीर पराक्रमी महान योद्धा : जनरल जोरावर सिंह	राकेश कुमार शर्मा	३१

कृषि दर्शन

कुलुई की कृषि व्यावसायिक शब्दावली - २	मौलू राम ठाकुर	३४

सृष्टि आख्यान

हरियाणा की लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार	राम शरण युयुत्सु	४०
ईश्वर गीत में सृष्टि रचना	विद्या सागर नेगी	४३
लाहौल के घुरे में सृष्टि रचना	डॉ. सूरत ठाकुर	४७

सम्पादकीय

तेरा वैभव अमर रहे माँ

भारत की सेना में राष्ट्र भक्ति का समुद्र सा गहरा सुदृढ़ संस्कार है और संकटों का सामना करने में आकाश को छूता हुआ उन्नत उत्साह है। भारत के सैनिक जवानों और खेतों में अनथक परिश्रम से अन्न उपजा कर प्राण रक्षक किसानों से देश कभी उऋण नहीं हो सकता। इनके प्रति कृतज्ञ अनुभूति से ईस्वी सन् 1965 (कलियुगाब्द 5067) में स्वतन्त्र भारत के दूसरे प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री ने राष्ट्रीय उद्घोष किया – **जय जवान! जय किसान!** पूर्व प्रधानमन्त्री श्री अटल विहारी वाजपयी ने मानव समाज और राष्ट्र जीवन में विज्ञान की अनूठी भूमिका के दृष्टिगत उक्त राष्ट्रीय उद्घोष को विस्तार दिया और कहा – **जय जवान! जय किसान!! जय विज्ञान!!!**

किसी देश की सुरक्षा की सुनिश्चितता उस देश के सेना के जवान होते हैं। इस दृष्टि से भारतीय सेना के जवानों की शूरवीरता और विश्वसनीयता सर्वोत्कृष्ट है। अभी पिछले दिनों सितम्बर मास में जम्मू-कश्मीर में आई भीषण बाढ़ के संकट के समय जिस साहस और सुनियोजित ढंग से भारतीय सेना ने लाखों बाढ़ पीड़ित लोगों को सुरक्षा प्रदान की, उससे सब के मन में इनके शौर्य को नमन करते हुए भाव जागृत हुए – **जय जवान!**

ईस्वी सन् 1841 (कलियुगाब्द 4943) में भारत की शौर्य विभूति जम्मू रियासत के राजा गुलाब सिंह के **सेनानायक जोरावर सिंह** के नेतृत्व में डोगरा सेना के जवानों ने लद्दाख में अपनी विजय पताका फहरा कर लद्दाख को महाराजा गुलाब सिंह के राज्य का हिस्सा बनाया और इसी कारण आज यह भारत का भूभाग है।

लद्दाख विजय के उपरान्त वे कैलाश मानसरोवर की ओर आगे बढ़े। तकलाकोट तो-यू के घमासान युद्ध में तिब्बती सेना के हाथों जनरल जोरावर सिंह वीरगति को प्राप्त हुए। बाद में तिब्बती सेना ने तो-यू में उनके शौर्य की स्मृति में एक स्तूप बनाया जिसे **सिंह छोरतन** के नाम से जाना जाता है। शत्रु पक्ष द्वारा इस प्रकार स्मारक बनाना विश्व इतिहास का एक अनूठा उदाहरण है जो जनरल जोरावर सिंह के अद्भुत एवं आकर्षक शौर्य का परिचायक है। जनरल जोरावर सिंह का यह ऐतिहासिक स्मारक राष्ट्र मानस के राष्ट्रभक्ति के इस भाव को सदैव प्रज्ज्वलित करता रहेगा–

तैरा वैभव अमर रहे माँ।
हम दिन चार रहें न रहें।।

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

संवीक्षण

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की प्रवृत्तियां

(भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में)

सतीश चन्द्र मित्तल

सर्वप्रथम इतिहास के प्रति अवधारणाओं का अति संक्षेप में स्पष्टीकरण आवश्यक होगा। इतिहास क्या है? आज के सन्दर्भ में 'हिस्ट्री' किसी पुरुष अथवा नारी की कहानी (His-story या Her-story)नहीं है; जैसा कि पूर्व काल में मान्यता रही। यह नेताओं राजा-महाराजाओं या वीर पुरुषों की गाथा भी नहीं है। न ही इतिहास का अर्थ, अतीत में घटित घटना से है। बल्कि आज महत्त्वपूर्ण यह है कि यह घटना क्यों और कैसे घटित हुई। यह 'तवारीख' अथवा तिथियों का ज्ञान मात्र भी नहीं है। इतिहास में कोई निर्णीत (Finality) भी नहीं है। नवीनतम तथ्यों के आधार पर उसमें परिवर्तन आवश्यक होता है।

इतिहास एक अखण्ड काल प्रवाह है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें परिवर्तन के बावजूद निरंतरता बनी रहती है। यह कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया, व्यक्ति, समाज और परिस्थितियों के संयोग से उत्पन्न होती है। प्रो. रांके का यह कथन भी सही है कि इतिहासकारों को ईमानदारी से तथ्यों की व्याख्या करनी चाहिए। ई. एच. सार के इस कथन में भी सच्चाई है कि इतिहास वर्तमान तथा अतीत के साथ अनवरत वार्तालाप है। भारतीय इतिहासकारों (आर सी. मजूमदार, यदुनाथ सरकार आदि) ने इतिहास को सत्य के साक्षात्कार की एक सतत प्रक्रिया माना है। इतिहास कुछ सत्य नहीं बल्कि पूर्ण सत्य पर आधारित होना चाहिए उस पर ही इतिहास का मजबूत ढांचा खड़ा किया जा सकता है।[१]

जहाँ तक आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की प्रवृतियों/दिशाओं का प्रश्न है, मैं उन्हें सुविधाओं की दृष्टियों से तीन प्रमुख भागों में बांटना चाहूंगा। ये हैं — साम्राज्यवादी, मार्क्सवादी तथा राष्ट्रीय।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकार

सामान्यतः यूरोप में १७ वीं शताब्दी को विद्वानों का, १८ वीं शताब्दी को प्रबुद्धता व तर्क का तथा १९ वीं शताब्दी को इतिहास का युग माना जाता है।[२] १९ वीं शताब्दी में यूरोपीयन विद्वानों ने इतिहास की अवधारणा, इसके स्वरूप, अध्ययन विधि तथा इसके सिद्धान्तों की और ध्यान दिया तथा इसका अध्ययन किया। ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास की व्याख्या इस ढंग से की जिसमें यूरोपीय उच्चता का अंहकार सदैव बना रहा। जेम्स मिल (१७७३-१८३६) पहला बिटिश इतिहासकार था जिसने औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन

दिया। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[३] में भारतीय इतिहास तथा संस्कृति का बड़ा अपमानजनक तथा घृणित चित्र प्रस्तुत किया है। उसने भारतीय इतिहास को मनमाने ढंग से हिन्दू, मुसलमान तथा ब्रिटिश कालों में बांटा। आश्चर्य की बात यह है कि वह न कभी भारत आया, न कभी किसी भारतीय से मिला और न ही भारत की किसी भाषा से परिचित था। लेकिन उसने अपनी इस अज्ञानता को वरदान[४] बतलाया तथा निष्पक्षता की गांरटी माना। यह पुस्तक आगे भारत में आने वाले ब्रिटिश प्रशासकों, इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शिका बन गई। टी.बी. मैकाले[५] (१८००-१८५६) ने इसी का अनुसरण करते हुए भारतीय वस्तुओं को हेय दृष्टि से देखा। दुर्भाग्य वश मैकाले स्वयं में कोई किपालेंग या बिल्वर फोर्स या बैंथम नहीं बल्कि एक 'वाद' बन गया। मैकालेवाद का भारत, भारतीय समाज तथा भारतीय मस्तिष्क पर दूरगामी प्रभाव हुआ।[६] इन्हीं साम्राज्यवादी तथा विभेदकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने का कार्य विभिन्न ब्रिटिश इतिहासकारों और प्रशासकों ने अपने-अपने क्षेत्रों में किया। जैसे जेम्स टाड़ (१७८२-१८३६) ने राजस्थान में, जान मैलजाम (१७६६-१८३३) ने मध्यभारत अथवा मालवा में, ग्रांट डफ (१७८६-१८५८) ने महाराष्ट्र में तथा डेनी कानिंघम (१८१२-१८५१) ने पंजाब में किया।

सीधे ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद से साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारतीय अतीत की कुछ समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने विष-बेल से, कुछ नये मिथकों तथा भ्रान्तियों को जन्म दिया। उन्होंने भारतीय अतीत की व्याख्या से अपने भविष्य के सपनों को पूरा करने का भरसक प्रयत्न किया तथा मनमानी व्याख्या की। उनका उद्देश्य भारत में ब्रिटिश शासन की सुरक्षा, दृढ़ता तथा निरन्तरता था जिसके लिए उन्होंने तथ्यहीन तर्क दिये।

सामान्यतः १८५८-१६४७ के दौरान ब्रिटिश इतिहासकारों ने भारत के प्रशासन अथवा संवैधानिक इतिहास का ही वर्णन किया है। उन्होंने भारतीय समाज की चिन्ता नहीं की। जहां कहीं भी आर्थिक पहलू का वर्णन किया वह भी राजनैतिक उपयोग की दृष्टि से। अतः मुख्य प्रवृत्ति प्रशासनिक इतिहास की रही। किसी भी साम्राज्यवादी इतिहासकार ने भारत की राष्ट्रीय चेतना की ओर ध्यान नहीं दिया। उदाहरणतः सर जार्ज चैस्ने ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर केवल दो पृष्ठ लिखे।[७] जिसमें उसने राष्ट्रीय कांग्रेस को गैर वफादार, पर कम शरारती बतलाया क्योंकि उसकी कार्यवाही बेहूदी है। उसने कांग्रेस के प्रारम्भिक अध्यक्षों को मूर्ख राजनीतिज्ञ बतलाया है। अतः इतिहास ब्रिटिश शाासक तन्त्र की दासी बन गया। नई परिस्थितियों ने नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया तथा ब्रिटिश शासकों ने भारतीय इतिहास की नवीन व्याख्याएं दीं। भारत में ब्रिटिश शासन की वैधता सिद्ध करने के लिए नये-नये आधार ढूंढे गए।[८]

सर हेनरी समर मैन जो मूलतः इतिहासकार नहीं था बल्कि १८६०-१८६६ तक भारतीय कौंसिल का कानूनी सदस्य था, ने भारत में ब्रिटिश शासन को कानूनी आधार[९] देने की कोशिश की,

उसने भारत तथा यूरोप में समान आर्य समूह के सिद्धान्त को रखा, जो उसके अनुसार भारत में आगे यह विकसित न हो सका। यूरोप में उसका विकास तथा प्रगति हुई। क्रमशः पहले यूनानी, रोमन, ईरानी तथा बाद में अंग्रेजी की बारी आई, अतः उनका भारत में शासन न्यायसंगत है। एक दूसरे ब्रिटिश कानूनी विशेषज्ञ सर फिट्जजेम्स स्टीफन जो भारतीय कौंसिल का १८६६-१८७२ तक सदस्य रहा, ने भारत में ब्रिटिश शासन को नैतिक आधार देने का प्रयत्न किया। वह स्वयं डारविन के प्राकृतिक चुनाव के कानून व बैन्थम के उपयोगितावाद का विशेषज्ञ माना जाता था। उसने भारत में एक मजबूत केन्द्रीत शासन की वकालत की तथा इसे भारत के करोड़ों लोगों के लिए 'बहुजन हिताय' बतलाया। उसने नैतिक आधार पर भारत में अनिवार्यता को बल दिया।[१०]

सर डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर (१८४०-१६००) जो इतिहास में विख्यात विक्टोरियन इतिहासकार माना जाता है, जातिगत एवं सामाजिक आधार दिया। उसने भारत को व्यक्तिहीन भूमि माना तथा भारतीय जनसंख्या को गैर आर्यन जनजाति, आर्यन, हिन्दुओं तथा मुसलमानों में बांटा।[११] उसका जाति तथा वंश का आधार महत्त्वपूर्ण माना गया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के आधुनिक इतिहास के प्रो. जान शीले (१८३१-१८६५) ने एक हल्का फुलका तर्क देते हुए कहा कि मूलभूत तथ्य यह है कि भारत में विदेशियों के प्रति द्वेष न था क्योंकि कोई भारत का था ही नहीं और सही अर्थों में कोई विदेशी न था।[१२]

इस प्रकार के विचारों का प्रतिपादन सर जान स्टेची ने अपने १८८४ में कैम्ब्रज विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के सम्मुख अपने भाषण में भारत नाम के किसी देश को स्वीकार न किया। वह इसे केवल एक भौगोलिक बिन्दुमात्र[१३] मानता है। इसी भान्ति सर अल्फ्रेड लायल ने ब्रिटिश शासन का आधार ऐतिहासिक विश्लेषण देकर किया।[१४]

अतः ब्रिटिश प्रशासकों ने अपनी राजनीतिक आकांक्षा पूर्ति हेतु मनमानी व्याख्या दी। उन्होंने भारत राष्ट्र, भारतीय राष्ट्रवाद तथा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को भुला सा दिया। वस्तुतः ब्रिटिश इतिहासकारों को भारतीय भावनाओं के प्रति कोई सहानुभूति न थी।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल से ही यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। वी.ए. स्मिथ तथा डाडवैल ने भारतीय चेतना को जान बूझकर पूर्णतः ओझल किया। टी.जी.वी. स्पीयर ने उसे केवल अनदेखी बतलाया जो अविश्वसनीय है।[१५] भारत की आक्सफोर्ड हिस्ट्री १६१६ में पहली बार तथा १६२३ में दूसरी बार प्रकाशित हुई परन्तु इसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के बारे में एक भी शब्द नहीं है। भारत का कैम्ब्रज इतिहास १६२०-१६३७ के बीच लिखा गया। इसमें ३०३ पृष्ठों में से केवल ३० पृष्ठ राष्ट्रीय आन्दोलन के बारे में है। इसमें भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन का नाम भी नहीं है। इतना ही नहीं गांधी जी के बारे में केवल तीन पंक्तियां

हैं और वह भी उनकी राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों के बारे में नहीं, बल्कि दक्षिण अफ्रीका में बैरिस्टर गांधी के बारे में हैं।[१६]

कैम्ब्रज शार्टर इतिहास में भी गांधी जी पर केवल तीन पंक्तियां हैं परन्तु इसमें उनका नाम भी गलत अर्थात् एम. आर. गांधी दिया गया है।[१७]

सर वेलेंटाइन शिरोल ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को 'अराजकतावाद' कहा है[१८] क्योंकि उसकी जड़े अराजकतावाद में दिखलाई देती है। सर हेरिंग्स वर्नाय लावेट (१८६४-१६४५) ने अपनी पुस्तक (१६१६) में एक गुप्त रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित की।[१६] उसने न केवल जलियांवाला हत्याकांड का समर्थन किया बल्कि सर माइकेल ओडवायर की प्रशंसा की।[२०] गैरिट के साथ मिलकर एडवर्ड थाम्सन ने भी भारत को स्वशासन के लिए ठीक नहीं माना।[२१] अतः संक्षिप्त में ब्रिटिश इतिहासकारों ने सरकारी मत का ही प्रतिपादन किया तथा भारतीयों की भावनाओं तथा राष्ट्रीय चेतना का जरा भी ध्यान नहीं दिया।

भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा न केवल भारत बल्कि विश्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। नई परिस्थितियों और नये मुद्दों ने इतिहासकारों को भी नई चुनौतियों तथा चेतावनियों को अपनी नई प्रवृतियों के साथ अपनाने के लिए प्रेरित किया। ब्रिटिश अथवा कैम्ब्रज विचारधारा के इतिहासकारों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की नई व्याख्याएं दी।[२२]

इसे भारत का स्वतन्त्रता का संघर्ष न कहकर शक्ति का हस्तातरण (Transter of power) कहा गया। उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन की समाप्ति को इसी नाम से पुकारा। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित १६४२-१६४७ महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों को भी 'ट्रासफर आफ पावर' कहा गया है।[२३] यह भी कहा गया कि भारत को स्वतन्त्रता देकर अंग्रेजों ने अपना पुराना वायदा पूरा किया। इसे अंग्रेजों की ओर से भारत को एक शानदार तोहफा (Fine gift to India) बतलाया गया। परन्तु वे इसे राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतना, जन आन्दोलन आदि का परिणाम जरा भी नहीं मानते।

ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की व्याख्या निष्पक्ष न होकर गलत तथा पक्षपात पूर्ण है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात अंग्रेजों खासकर कैम्ब्रज इतिहासकारों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने चिन्तन का मुख्य विषय बनाया।

जान ग्लेयर इस नवीन प्रकृति का मुखिया कहा जा सकता है। उसने अफ्रीका के सन्दर्भ में एक पुस्तक लिखी तथा अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य के लिए उत्तरदायी अफ्रीका के लोगों की सहायता का परिणाम बतलाया।[२४] जान ग्लेबर के एक शिष्य अनिल शील ने यही फारमूला भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर भी लागू किया। योजना १८७० से १६४० तक के काल को पांच भागों में प्रकाशित करने की थी।[२५] परन्तु केवल इसका यही भाग प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में अलिन शील

ने भारत के प्रारम्भिक विभिन्न राजनैतिक संगठनों का विवरण देते हुए लार्ड डफरिन तक के काल को लिया है। इसमें इतिहास के प्रमुख साधन प्रचुर मात्र में प्राप्त भारत के व्यक्तियों के व्यक्तिगत कागजपत्र बतलायें है।[२६] उसने कुछ भारतीय अधिकारियों, भूमि धारकों तथा नवाबों व कुछ पढ़े लिखे भारतीयों को ब्रिटिश राज का सहायक बतलाया है।[२७] अनिल शील भी भारत की एकता को नहीं मानता।[२८] वह अपनी पुस्तक में भारतीय राष्ट्रवाद की जगह राष्ट्रवादों शब्द को प्रयुक्त करता है। वह राष्ट्रीय भावना के लिए उत्तरदायी कुछ क्षेत्रीय या प्रेसीडेंसी के सर्वोत्तम सम्भ्रांत समूह (Elite) को मानता है। वह अंग्रेजों से पूर्व किसी प्रकार की राष्ट्रीय भावना की उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता।

जान ग्लेयर के एक अन्य शिष्य सी.ए. बेयली ने भी भारत के सन्दर्भ में राष्ट्रवाद को व्यक्तिगत स्वार्थों का संयोग बतलाया।[२९] उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता। अनिल शील के एक शिष्य गोर्डन नानसन ने भारतीय राष्ट्रवाद को मिथ्या तथा खोखला बतलाया।[३०]

सन १८७७ में कैम्ब्रज इतिहासकारों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को पुनः एक मोड़ दिया। अब इसे प्रेसीडेंसी या क्षेत्रीय एलीट की देन न बताकर स्थानीय हितों तथा परस्पर के झगड़े-विवादों तथा स्वार्थों को इसका आधार बतलाया।

यदि इस काल में प्रकाशित साहित्य की ओर सरसरी निगाह डालें तो यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। इस सन्दर्भ में गोर्डन नानसन ने जो अनिल शील का शिष्य तथा मार्डन एशियन स्टेडीज का सम्पादक था, अपनी पी. एच.डी. की बम्बई के बारे में लिखी पुस्तक में उसने कांग्रेस को सरकार के विरुद्ध स्थानीय असन्तोष सुनने का एक सुविधाजनक फोरम बतलाया।[३१] वह महाराष्ट्र की राजनीति में किसी भी प्रकार की राष्ट्रीयता का विकास नहीं मानता तथा वह चितपावन ब्राह्मणों का राजनीति में प्रभावी स्थान मानता है। साथ ही गोखले-तिलक, अगरकर-तिलक व रानाडे-तिलक के परस्पर टकराव तथा स्वार्थों का विस्तृत वर्णन करता है। वह तिलक के नकारात्मक पक्ष को उभारता है तथा उसे शक्ति का भूखा[३२] तथा शरारतों का निर्माता मानता है।

इसी भान्ति डी.ए. वाशब्रुद व सी. जे. बेकर ने दक्षिण भारत की राजनीति पर काम किया। वाशब्रुद ने जहां दक्षिण भारत के १८७०-१९२० के काल पर लिखा, वहां बेकर ने १९२०-१९३७ तक की मद्रास प्रेसीडेन्सी की गतिविधियों का अवलोकन किया। वास्तव में दोनों के कालक्रम में अन्तर है परन्तु निष्कर्षों में नहीं। इसमें उन्होंने शक्ति तथा प्रभाव का क्षेत्र स्थानीय ग्रामीण स्वामियों से हटकर पाश्चात्य शिक्षित एलीट को बतलाया। दोनों ने ही अपने ग्रन्थों में परस्पर गुटबाजी, स्वार्थों, अवसरवादिता, परस्पर षड्यन्त्रों, छल कपट आदि शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है। वाशब्रुद् कांग्रेस नेताओं को शक्ति का भूखा मानता है तथा गर्म-नर्म दलों के टकराव को सत्ता संघर्ष में अन्दर आना तथा बाहर जाना मानता है।

सी.के. बेकर के अनुसार असहयोग आन्दोलन सिवाय कुछ शराब की दुकानों पर आक्रमण या कुछ पुलिस मुठभेड़ों के अलावा कुछ न था।[३३] सविनय अवज्ञा आन्दोलन पूर्णतः असफल रहा[३४] तथा राजनैतिक दलों का विचारधाराओं से कोई सम्बन्ध न था।[३५] इसी भान्ति फ्रांसिस रोबिनसन ने उत्तर प्रदेश में मुस्लिम अलगाव पर अपना ग्रन्थ प्रकाशित किया। वह विस्तृत रूप से पृथक निर्वाचन का वर्णन करता है। सी.ऐ. बेयली ने अपने एक अन्य ग्रन्थ में स्थानीय एलीट का वर्णन किया है। वह राष्ट्रीय विचारधारा के अस्तित्व को एक निम्न धरातल पर पाता है। उसने यह भी लिखा है कि कांग्रेस ने अपने चुनाव प्रचार में धार्मिक नेताओं का प्रयोग किया।[३६]

उपरोक्त ग्रन्थों के अलावा दो और महत्त्वपूर्ण इतिहासकार हैं जिनका वर्णन महत्त्वपूर्ण है। इसमें पहली है ऐरिक स्टोक्स की शिष्या जूडिय ब्राउना जिसने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर कई ग्रन्थ लिखे। उसने अपने पहले ग्रन्थ[३७] में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रखा कि क्यों गांधी के व्यक्तित्व ने भारतीय राजनीति को बदला? अथवा गांधी ने तत्कालीन परिस्थिति का लाभ उठाकर राजनीति व समाज में परिवर्तन किया। उसने पहले विचार को महत्व दिया। दूसरे ग्रन्थ[३८] में स्थानीय प्रभावों तथा राष्ट्रव्यापी गतिविधियों का संतुलित प्रयोग किया तथा इसे देने व लेने का खेल कहा। उदाहरणतः गांधी ने मुसलमानों का समर्थन खिलाफत आन्दोलन में दिया तथा उसके बदले असहयोग आन्दोलन में उनका समर्थन प्राप्त किया। तीसरी पुस्तक[३९] में उसने भारत छोड़ो आन्दोलन की भी आलोचना की।

दूसरे महत्त्वपूर्ण इतिहासकार बी. आर टोमिलसन है जिसने अपने ग्रन्थ में गृह सरकार तथा ब्रिटिश भारत के सम्बन्धों का वर्णन किया। उसका कथन है कि भारत में राजनीतिक ढांचा केवल देखने मात्र का नहीं पर वास्तव में न था। वह इस ग्रन्थ में परस्पर कटुता तथा गुटबाजी का ही अधिक वर्णन करता है।[४०] इतिहासकार तपन राय चौधरी ने असन्तुलित तरीके की आलोचना करते हुए लिखा कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन पर केवल दो पृष्ठ दिये जबकि परस्पर झगड़ों पर ५८ पृष्ठ दिये हैं।[४१]

१८८६ से कैम्ब्रज हिस्टोरियन्स ने अध्ययन का नया मोड़ देने का प्रयत्न किया। उन्होंने न्यू कैम्ब्रज भारत का इतिहास लिखने की योजना बनाई। जिसमें १६००-१६४७ के इतिहास की ३२ छोटी-छोटी पुस्तिकाओं जो प्रत्येक प्रायः २०० पृष्ठों की होंगी, प्रकाशित करने की योजना बनाई। इसमें से अधिकतर प्रकाशित हो गई है। परन्तु इनके सार में कोई अन्तर नहीं है। विषय वही है परन्तु कुछ नये साधनों को प्रकाश में लाया गया है।

संक्षेप में कैम्ब्रज इतिहासकारों ने अध्ययन के लिए नेमियर पद्धति[४२] का असन्तुलित तथा अतार्किक ढंग से प्रयोग किया है। जिसने मुख्यतः व्यक्तिगत चरित्र हनन का स्वरूप ले लिया है।

उदाहरण के लिए गांधी जी को एक धूर्त्त, कुशलता से कार्य करने वाला[४३], तिलक को एक कठिनाई पैदा करने वाला विवादी तथा जातिवादी[४४], लाला लाजपतराय को एक राजनीतिक गिरगिट[४५], सी आर. दास को भारतीय राजनीति में शानदार अवसरवादी[४६], एस.सी. बोस को ओछा तथा दुर्जनों का नायक[४७], सी.बी. रामास्वामी अय्यर को नौकरी का इच्छुक[४८] तथा बी.सी. राय को एक गुटबाज बतलाया।[४९] वस्तुतः कैम्ब्रज इतिहासकारों ने नेमियर पद्धति को बड़े क्रूर तथा नकरात्मक ढंग से उपयोग में किया। कई विद्वान इतिहासकारों एस. गोपाल[५०] तथा सुमित सरकार[५१] ने इसकी कटु आलोचना की है। वस्तुतः यह विधि न उपयोगी है और न ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जैसे एक बड़े आन्दोलन के उपयुक्त है। दूसरे, कैम्ब्रज इतिहासकारों ने मानव स्वभाव का विवेचन हाल्स तथा मैकियावली के चिन्तन के अनुरूप किया। वस्तुतः मनुष्य के व्यवहार को एक अनुभव के आधार पर निरूपित किया गया है जिसके एजेंट भारत में है और सर्वत्र है।[५२] परन्तु भारत के संदर्भ में व्यक्ति और उसकी सफलताओं को कम आंका गया है।[५३] साथ ही भारत का विभाजन जाति, धर्म, क्षेत्र, वंश, के आधार पर बांटना देखा गया है परन्तु एकता के सूत्रों को बिल्कुल भुला दिया है। सम्भवतः यह देखते हुए वे स्वारलैण्ड या आयरलैण्ड के टकराव या प्रोटेस्टैंट व कैथोलिक के संघर्षों को भूल जाते हैं। कैम्ब्रज इतिहासकारों ने जान बूझकर संघर्ष के वैचारिक तत्वों को भारतीय राजनीति से अलग-अलग करके देखा[५४] जो अमान्य व अनुचित ही नहीं वरन् विद्वेषपूर्ण भी है।

यह सत्य है कि कैम्ब्रज इतिहासकारों ने भारतीय आन्दोलन जैसे उपेक्षित क्षेत्र पर प्रकाश डाला। अनेक प्रकार की शोध सामग्री को ध्यान में लाया। उन्होंने विभिन्न पद्धतियों को मिश्रित कर उसका उपयोग किया है। लेकिन इसके पीछे उनका साम्राज्यवादी चिन्तन था।

निष्कर्ष रूप में कैम्ब्रज इतिहासकारों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को संभ्रांत व्यक्तियों का भौतिक लाभ के लिए प्रयास बताया है। उनके अनुसार इसके पीछे कोई विचार या चिन्तन न था। तपन राय चौधरी के अनुसार उनके लिए भारतीयों का यह संघर्ष जानवरों की लड़ाई जैसा था।[५५] परन्तु कैम्ब्रज इतिहासकारों के इस मिथक को विश्व में कौन स्वीकार करेगा?

मार्क्सवादी इतिहासकार

मार्क्सवादी इतिहासकारों का चिन्तन मार्क्स के इतिहास के सन्दर्भ में विचारों पर आधारित है। सामान्यतः इसे अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त प्रशासकीय इतिहास का उत्तर माना जाता है। मार्क्स के विचार सहजता से उसके २३ लेखों के आधार पर जाने जा सकते हैं।[५६] सामान्यतः इसे अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त प्रशासकीय इतिहास का उत्तर माना जाता है। मार्क्स के विचार जो उसने १८५३-१८५७ के दौरान लिखे थे उसने भारत में ब्रिटिश शासन का दोहरा लक्ष्य बतलाया एक ध्वंसात्मक तथा दूसरा सृजनात्मक।

उसने स्वयं लिखा[५७] ''भारतीय समाज का कोई इतिहास नहीं है। कम से कम ज्ञात इतिहास नहीं है। बल्कि उन लोगों का इतिहास है जिन लोगों ने कभी विदेशी आक्रमणों का प्रतिरोध नहीं किया। जो बिल्कुल निष्क्रिय बैठा रहा और जो भी आया भारत को पराभूत करता चला गया। संयोगवश भारत पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया। यह तो तुर्किया, पर्शियन्स या रूसियों के भी अधिकार में हो सकता था।

इंग्लैण्ड को दोहरे उद्देश्य पूरे करने थे ध्वंसात्मक तथा सृजनात्मक। पुरानी ऐशियाटिक सोसायटी की समाप्ति तथा एशिया में पाश्चात्य समाज की भौतिक आधारशिला रखना।

जेम्स मिल की भांति कार्ल मार्क्स न कभी भारत आया न किसी भारतीय भाषा का ज्ञाता था। उसने भारत का मनमाना चित्रण किया। विद्वान विपन चन्द्र ने भी भारत के सन्दर्भ में उसके लेखों को पत्रकारों जैसा माना है जो एक उदारवादी पत्र के लिए लिखे गये थे।[५८] वस्तुतः मार्क्स की देन भारतीय इतिहास की व्याख्या में नहीं बल्कि इसकी लेखन पद्धति में है जो इसके ऐतिहासिक भौतिकवाद, आर्थिक निश्चिंता तथा वर्ग संघर्ष पर आधारित है। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की मार्क्स के आधार पर सर्वप्रथम व्याख्या एम.ए. राय ने दी। उसने १६२२ में 'इंडियन ट्रॉन्जिशन' पुस्तक लिखी। यह है आचर्य की बात कि तब तक राय को यह पता ही नहीं था कि मार्क्स ने भी भारत के बारे में कोई लेख लिखे हैं। राय मानता है कि भारत पूंजीवाद की ओर बढ़ रहा है पर अभी तक पूंजीवादी देश नहीं है।

इस सन्दर्भ में पहला गम्भीर तथा प्रभावी कार्य ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के एक आंग्ल-इंडियन नेता रजनी पात्र दत्त ने १६४० में 'इंडिया टूडे' में किया। उसने मार्क्सवादी विश्लेषण को गास्पल सत्य[५९] तथा उसकी पद्धति को वैज्ञानिक बतलाया है। इसी भान्ति डब्ल्यू सी. स्मिथ ने मुस्लिम समुदाय पर "मार्डन इस्लाम इन इंडिया सोशल एलिसेज" लिखकर किया।

भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये। इसमें उल्लेखनीय है डॉ. ऐ.आर. देसाई की "सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इडियन नेशनलिज्म" (१६४८), एम. ए. डांगे की "इंडिया फाम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टू सेलेवरी" तथा डी.डी. कौशाम्बी का "ऐन इन्ट्रोडक्सन टू द स्टेडी आफ इंडियन हिस्ट्री" (१६५६)।

देसाई ने दावा[६०] किया कि उसकी थीसीस इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार लिखी गई है परन्तु उसने भारत के सन्दर्भ में आर्थिक धुरी पूंजीवाद को न मानकर समाजवाद को बतलाया है। डांगे ने तथ्यों की चिन्ता न करते हुए मार्क्स के अनुरूप भारतीय इतिहास के विभिन्न स्तरों का उल्लेख किया है।[६१] कौशाम्बी ने अपनी पुस्तक में भारतीय इतिहास का प्रारम्भ से ब्रिटिश शक्ति के उदय तक का वर्णन किया है परन्तु मार्क्स के विचार को भारत के आर्थिक इतिहास के

बारे में भ्रमित तथा मार्क्स के उस कथन को भारतीय समाज में कोई इतिहास ही नहीं है, को चुनौती दी है।[६२]

प्रमुख मार्क्सवादी इतिहासकारों ने आर्थिक तर्कों को ही प्रमुखता दी है। इसमें डॉ. विपन चंदर व सुमित सरकार उल्लेखनीय है। डॉ. विपन चंदर ने अपनी पी एच डी. थीसीस[६३] जो एक विशालकाय ग्रन्थ (७८३ पृष्ठों) का है, में भारतीय राष्ट्रवाद के १८८०-१९०५ के दौरान के आर्थिक पहलुओं का विवेचन किया है। इसके मुख्यतः आर्थिक दोहन (Economic Drain) का वर्णन है। सुमित सरकार[६४] ने स्वदेशी आन्दोलन (१९०३-८) को एक भद्रलोक की देन बतलाया जिसमें जन सामान्य की भागीदारी नहीं थी। परन्तु भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की समस्या को समझने में मार्क्सवादी पद्धति को वह महत्त्वपूर्ण मानता है।

मार्क्स ने भारत में औपनिवेशिक नीति पर प्रारम्भिक अवस्था में कुछ लेख लिखे थे परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इसकी अन्तर्राष्ट्रीय वैचारिक पृष्ठभूमि तथा चिन्तन भी है। भारत में इसका प्रवेश १९२० में हुआ। सभी मार्क्सवादी प्रायः यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की दो प्रकार की प्रवृति रही है। एक क्रान्तिकारी तथा प्रजातान्त्रिक जो कृषकों के राजनीतिक आन्दोलनों को व्यक्त करती हैं तथा दूसरी बुर्जुआवादी जो राष्ट्रीय तथा सुधारवादी है तथा जो उसकी दोहरी भूमिका को व्यक्त करता है। लेनिन ने उपरोक्त दोनों प्रवृत्तियों को स्वीकार किया था। उसने कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल(कोमिनटर्न) के लिए कुछ मार्गदर्शक तत्त्व भी दिये हैं। उसने लिखा है कि प्रोलिटेरियट के लिए दोनों प्रवृतियों के सिद्धान्तों के अन्तर को जानना महत्त्वपूर्ण है।[६५] उन्होंने एक भाषण में कहा आपको अपना आधार बुर्जुआ राष्ट्रवादियों में ढूढंना चाहिए जो जाग्रत हैं तथा इनको जगाओं जो ऐतिहासिक निर्णायक है।[६६] उन्होंने पूर्व की जनता से कहा कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल को औपनिवेशिक तथा पिछड़े हुए देशों के बुर्जुआ प्रजातन्त्र से अस्थायी समझौता करना चाहिए परन्तु उनमें विलय नहीं होना चाहिए। तमाम परिस्थितियों में प्रोलिटेरियट की स्वतन्त्रता चाहिए चाहे वह भ्रूण अवस्था में ही क्यों न हो।[६७]

अतः मार्क्सवादी चिन्तकों ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप तथा प्रवृत्ति को इसी रूप में देखा तथा लिखा। कामिंटर्न के अनुरूप उनकी लेखन प्रवृत्ति भी नवस्वरूप लेती गई।

सामान्यतः स्टालिन युग तक मार्क्सवादियों को आर्थोडोक्स मार्क्सवादी[६८] कहा जाता है जो ब्रोड तथा आधुनिक मार्क्सवादियों के लिए प्रारम्भिक है। अनेक मार्क्सवादी अपने को सेकुलर मार्क्सवादी कहलाना पंसद करते हैं। अतः एक प्रसिद्ध मार्क्सवादी विद्वान का कथन है कि मार्क्सवादी दिशाएं भी एक नहीं अनेक हैं। अतः इसे समझने में रुकावटें बढ़ी, न कि विषय की स्पष्टता तथा न्यायिक विश्लेषण ही।

मार्क्सवादी इतिहासकारों ने भारतीय नेतृत्व का सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक क्षेत्र में अविश्वास तथा उपेक्षा का भाव व्यक्त किया। उदाहरण के लिए राजा राम मोहन राय की सफलताओं को सीमित तथा संदिग्ध[६९] साम्राज्यवादी[७०] कहा गया। कहा गया कि उसने अपार धन इकट्ठा किया था तथा शाही कुलीनतन्त्र की भांति सामाजिक स्तर भी बनाया।[७१] उसके विचार सामान्तवादी नहीं, बल्कि पूंजीवादी थे।[७२] वह बुर्जुओं का पथ प्रदर्शक था।[७३] इसी भान्ति अरविन्द घोष एक सामाजिक कल्पनाओं का कर्त्ता[७४] कहा गया। उसके विचारों को आधारहीन तथा उसके एकात्मक दर्शन तथा समाजविज्ञान को किसी भी समय तथा कहीं भी व्यावहारिक नहीं बतलाया।[७५]

मार्क्सवादी इतिहासकारों का भारत के राष्ट्रीय नेताओं से भी टकराव रहा। उनकी उपेक्षा ही नहीं की बल्कि चरित्र हनन भी किया गया। उदाहरण के लिए यदि महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस को लें तो कुछ मार्क्सवादी इतिहासकारों का मत है कि गांधी और प. नेहरू भारत की राष्ट्रीय बुर्जुआवादियों का नेतृत्व करते थे, यदि गांधी भ्रष्ट अथवा विकसित किसानों का नेतृत्व करते थे तो नेहरू केवल नगरीय वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे।[७६]

गांधी के व्यक्तित्व की आलोचना होती रही है। कभी उसे साम्राज्यवाद विरोधी तथा कभी समझौतावादी माना गया है।[७७] आजादी से पूर्व गांधी जी को छोटे बुर्जुआ वर्ग का नेता,[७८] पूंजीपतियों का हितैषी[७९] तथा गांधी के तरीकों तथा आध्यात्मिकता की कटु आलोचना की गई।[८०] उसे ब्रिटिश का सहायता करने वाला तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन का विद्रोही भी कहा गया।[८१] परन्तु सोवियत यूनियन के परिवर्तित व्यवहार के कारण वही गांधी जी एक पेचीदा व्यक्तित्व[८२] बुर्जुवा वर्ग के प्रतिनिधि से सच्चे ट्रेड यूनियन नेता मानववादी बन गये। गांधी को गांधीवाद से महान कहा गया।[८३] प्रो. उत्यवान्सकी ने गांधी की बड़ी प्रशंसा की।[८४] वहां नेहरू जी पहले प्रशंसा के पात्र तथा बाद में आलोचना का विषय बन गये। नेहरू जी को कांग्रेस में पहला व्यक्ति माना जो समाजवाद के बारे में बोला।[८५] प्रो. आर. उत्यवान्सकी ने नेहरू जी को हृदय से समाजवादी, परन्तु साथ ही बुर्जुवा राजनैतिक दल का मुखिया कहा।[८६] स्वतन्त्रता के बाद नेहरू जी को व्यक्तिगत समाजवादी कहा।[८७] प्रो. ओ. बी. मार्टिशिन के विचारों में उन्हें अस्थिर तथा अनुपयुक्त बतलाया गया।[८८] उसके विचार से १९४९ से नेहरू जी 'रूढ़िवादी' परस्पर विरोधी विचारों का व्यक्ति था।[८९]

इसी भान्ति सुभाष चन्द्र बोस के साथ व्यवहार बदलता रहा। सुभाष को दूसरी बार कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर बनाने वालों में मार्क्सवादियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। कम्युनिस्ट महासचिव पी.सी. जोशी ने उसके समर्थन में अपने पत्र नेशनल फ्रंट में कई लेख तथा सम्पादकीय लिखे थे।[९०] परन्तु सुभाष जी के जापान जाने पर उन्हें तोजो का कुत्ता ही नहीं बल्कि अनेक भद्दी

गालियों से पूर्ण उनके कार्टून भी छापे।[६१]

मार्क्सवादियों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा चरित्र पर भी अनेक टीका टिप्पणी की। रजनीकान्त दत्त ने कांग्रेस की स्थापना को एक सुरक्षा वाल्ब[६२] बतलाया। बाद में इसे पूंजीपतियों द्वारा स्थापित कहा गया।[६३]

कालान्तर में कांग्रेस के प्रति मार्क्सवादी इतिहासकारों में वैचारिक अन्तर दिखलाई देता है। १९८५ में कांग्रेस को पहली बार शक्तिशाली तथा विश्व विख्यात भारतीय लोगों का साम्राज्यवाद विरोधी दल कहा गया है।[६४]

संक्षेप में मार्क्सवादी इतिहासकारों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलनों को विभिन्न नामों से पुकारा। स्वदेशी आन्दोलन को एक भद्र लोगों का विषय माना गया जो जनता की सहानुभूति न प्राप्त कर सका।[६५]

असहयोग आन्दोलन को मध्यमवर्गीय आन्दोलन कहा गया।[६६] आर. पी. दत्त ने गांधी जी के बारडोली प्रस्ताव को जमींदारों तथा साम्राज्यवादियों के हित में बतलाया।[६७] भारत छोड़ो आन्दोलन को 'फास्सिटों की सहायता में' किया गया बतलाया गया। नम्बूदरीपाद ने अपनी थीसीस में भारत को एक राष्ट्र नहीं बल्कि राष्ट्रीयताओं का समूह कहा है। वस्तुतः उन्होंने प्रारम्भ में भारत की स्वतन्त्रता को स्वीकार ही नहीं किया। अतः मार्क्सवादी चिन्तन व विचारों को सोवियत संघ की भारत में हुई घटनाओं के भारत के सन्दर्भ में प्रतिक्रियाओं के रूप में देखा जा सकता है।

मार्क्सवादी चिन्तकों ने आर्थिक कारणों तथा वैचारिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण देन दी, परन्तु उनकी जड़े भारतीय समाज में न होने के कारण उन्होंने भारतीय इतिहास या विरासत का सही मूल्यांकन नहीं किया। उनका भारतीय राष्ट्रवाद सांस्कृतिक विरासत तथा धर्म के प्रति शायद ही लगाव रहा हो, साथ ही उन्होंने प्रमुखता से परिवर्तन के लिए क्रान्तिकारी तरीकों को मान्यता दी। अतः वह भारतीय जन मानस की सहानुभूति न प्राप्त कर सका परन्तु निश्चय ही भारतीय इतिहास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर देखने का एक नजरिया प्रस्तुत किया जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्रवादी इतिहासकार

भारतीय राष्ट्रवाद की पेचीदगी के कारण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन भी कई धाराओं में प्रवाहित होता दिखलाई देता है। अतः इसके स्वरूप में एकात्मकता का अभाव है परन्तु अनेक तत्व सामान्य है। सामान्यतः भारत के राष्ट्रवादी लेखक साम्राज्यवाद विरोधी तथा अनेक विसंगतियों तथा भ्रांतियों को उद्घाटित करते हैं। इन्होंने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक आधारों पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की कटु आलोचना की। दादा भाई नौरोजी, आर.सी. दत्त, मैजर वसु, लोकमान्य तिलक भारतीय इतिहास शास्त्र के पूर्वगामी कहे जा सकते हैं।[६८]

राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने राजनीतिक पराधीनता, आर्थिक शोषण तथा भेदभाव का विरोध किया। यह उल्लेखनीय है कि भारत में आर्थिक असन्तोष का जागरण गैरमार्क्सवादी चिन्तकों ने किया। दादा भाई नौरोजी तथा रमेश चन्द्र दत्त ने भारत के आर्थिक इतिहास का विश्लेषण करते हुए आर्थिक अपवहन की विस्तृत चर्चा की।[९९] दत्त पहले भारतीय इतिहासकार थे जिन्होंने भारत की असली समस्या भूमि तथा कृषि बतलाया।[१००]

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राष्ट्रवादी चिन्तक प्रायः यह मानते थे कि स्वतन्त्रता का उद्‌भव सांस्कृतिक विरासत तथा अतीत के गौरव में है। उन्होंने देश की भौगोलिक एकता तथा सांस्कृतिक अस्तित्व को महत्त्व दिया। उन्होंने धर्म और आध्यात्मिक जीवन मूल्यों को प्रमुखता दी। उपरोक्त चिन्तन स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, महर्षि अरविन्द घोष, बंकिम चट्टोपाध्याय, वीर सावरकर, भाई परमानन्द तथा अन्यों के लेखन में स्पष्ट होता है। इन्होंने समूचे भारतीय इतिहास लेखकों जैसे सर यदुनाथ सरकार, के.पी. जायसवाल, एस. ए. अल्केतर, राधा कुमुद मुखर्जी, नीलकंठ शास्त्री आदि को प्रभावित किया।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपने मिथ्या कथनों तथा वक्तव्यों से भारतीय अलगाव तथा विभेदकारी प्रवृतियों को तीव्रता से बढ़ावा दिया। अब राष्ट्रीय इतिहासकारों ने भी इतिहास की व्याख्या के नवमार्ग को प्रोत्साहन दिया। सामान्यतः उन्होंने पाश्चात्य राष्ट्रवाद के राजनैतिक दर्शन को पूर्णतः स्वीकार किया। उन्होंने 'भारत एक राष्ट्र बनने वाला है' की उक्ति भी स्वीकार की। मिश्रित संस्कृति का कहना भी स्वीकार किया। लोक मान्य तिलक की मृत्यु से कांग्रेस के मंच से सांस्कृतिक एजेडा भी गायब हो गया। हिन्दू मुस्लिम एकता भारतीय राष्ट्रवाद की पहचान बन गई। इसमें उल्लेखनीय विचारक पट्टाभि सीतारमैया, एस.एन. बैनर्जी, ए.सी. मजूमदार आदरणीय एवं उल्लेखनीय है।

भारतीय स्वतन्त्रा के पश्चात भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में एक प्रभावी इतिहास लिखवाने के सरकारी प्रयत्न हुए। १९५२ में भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार आर.सी. मजूमदार को उक्त योजना का निदेशक बनाया गया परन्तु १९५५[१०१] में इसका प्रथम ड्राफ्ट आने पर सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया बल्कि इसका झुकाव बंगाल की ओर बताया गया।[१०२] अतः सरकार ने इसे अस्वीकार करते हुए ताराचन्द को इसका नया निदेशक बनाया। वस्तुतः दोनों द्वारा लिखे गये राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास विश्लेषण, विचारों और परिणामों में परस्पर विरोधी है। एक दो उदाहरण देना उपयुक्त होगा। ताराचन्द ने अपने विश्लेषण को द्वन्द्वात्मक बतलाया। अर्थात् ब्रिटिश के आगमन से पूर्व समाज को (थीसीस)[१०३] ब्रिटिश शासन को (एण्टी-थीसीस) तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन को (सीनथेसेस) कहा। मजूमदार ने राजनैतिक संघर्षो का क्रमबद्ध वर्णन किया। इसी भान्ति ताराचन्द ने १८५७ के संघर्ष को एक राष्ट्रीय विद्रोह कहा जबकि मजूमदार ने

इसके महत्त्व को मनाते हुए भी इसे न प्रथम, न राष्ट्रीय और न ही स्वतन्त्रता संघर्ष माना है।[१०४] ताराचन्द ने हिन्दू-मुस्लिम विषय को मिश्रित संस्कृति कहा जबकि मजूमदार ने इनमें अलगाव की बात की[१०५] तथा मुसलतानों के इस अलगाव की उनकी राष्ट्र की मुख्यधारा में न मिलना बताया तथा इस अलगाव को भारतीय राष्ट्रवाद को जड़े काटने वाला बताया।[१०६]

१६७० के दशक में भारतीय राष्ट्रवाद को नवदिशा देने के पुनः प्रयत्न हुए। भारतीय कम्युनिस्टों के सहयोग से इतिहास की पुस्तकों में भारी परिवर्तन के प्रयास हुए। आई.सी.एच.आर. द्वारा एक दश भागों में 'टूवर्डस फ्रीडम' प्रोजेक्ट की योजना बनी जो अभी तक पूरी नहीं हुई।

अतः संक्षेप में भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकार कई धाराओं में बंटे हुई दिखलाई देते हैं। कुछ सांस्कृतिक राष्ट्रवादी, कुछ सेकुलर राष्ट्रवादी व कुछ सूडोराष्ट्रवादी आदि कहलाते हैं। भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों में कुछ प्रमुख हैं जैसे गिरिजा के मुखर्जी, बी.एन. दत्त, बी.आर.नन्दा, एम. एम.दास, एन. एम. बोस, एस.आर. महरोत्र, ए.सी. बोस, रवीन्द्र कुमार आदि। इन सबके विश्लेषण, तर्कों व तथ्यों के वर्णन तथा अनुसन्धानों में भिन्नता है। परन्तु ये सभी राष्ट्रीय आन्दोलन के किसी न किसी भाग को स्पर्श करते हैं।

उपरोक्त तीन प्रमुख प्रवृत्तियों के अलावा एक नवविकसित प्रवृत्ति को भी देखा जा सकता है। इसके मुख्य संस्थापकों में प्रो. रणजीत गुहा का नाम उल्लेखनीय है।[१०७] भारत के औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी इतिहासकारों के विस्तृत अध्ययन के पश्चात इनका मत है कि भारत के इतिहास का सही स्वायत्त इतिहास का वर्णन ही नहीं हुआ। भारतीय विद्वानों ने भी केवल परतन्त्रता से स्वतन्त्रता की ओर परिवर्तन का वर्णन किया है। सभी इतिहास किसी वर्ग विशेष को देखते हुए लिखे गये हैं।

यह इतिहास पोस्टमाडर्न है जो मुख्यतः सामाजिक ढाँचे को आधार मानकर लिखा गया। इन्हें लगता है कि इतिहास में उपेक्षित वर्ग को कोई स्थान नहीं दिया गया। कुछ सीमा तक इसे निम्न का इतिहास (History from below) कह सकते हैं। ये मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष को नहीं मानते।[१०८] इस प्रवृत्ति को सबअल्टर्न (Sub-Ultarn) कहा तथा भारत के एक स्वायत्त भारतीय इतिहासशास्त्र का समर्थन किया है।[१०९]

संक्षेप में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में मूलतः साम्राज्यवादी, मार्क्सवादी तथा राष्ट्रवादी तीन प्रकार की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि इन तीनों में परस्पर दृष्टिविश्लेषण, अध्ययनपद्धति तथा निष्कर्षों में अन्तर ही नहीं बल्कि अपनी-अपनी प्रवृत्तियों की व्याख्या में अन्तः अन्तर तथा विवाद है। अतः प्रत्येक प्रवृत्ति के स्वरूप में एकरूपता नहीं है। उदाहरणतः औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहासकार जहां जागृति का मुख्य कारण पहले जातिवाद

को मानते हैं फिर रिजनल इलीट, अविश्वसनीय नेशनल बुर्जुआ वर्ग की देन मानते हैं। जबकि राष्ट्रवादी इसमें सभी वर्गो सम्प्रदायों तथा समुदायों का योगदान मानते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में किसी प्रवृत्ति की एकरूपता ढूंढना अथवा उसे प्रमुख बताना कठिन तथा असत्य होगा। वस्तुतः भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास अभी भी अनेक विसंगतियों, भ्रांतियों तथा मिथकों से ओत-प्रोत है जिसके लिए गम्भीर अनुसंन्धान की आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

१. आर. सी. मजूमदार, अध्यक्षीय भाषण, इन्स्टीट्यूट आफ हिस्टोरिकल स्टडीज, कलकत्ता (श्री नगर में १९६८ में छठे अधिवेशन पर)

२. पाईटर नैयल, **यूज एण्ड अब्यूज आफ हिस्ट्री**, पृ. ३२, सुबोध कुमार मुखर्जी, इवोलूयशन आफ हिस्टोरियोग्रेफी इन मार्डन इंडिया (१९००-१९६०), ए स्टेडी आफ द राइटिंग्स आफ इंडियन हिस्ट्री बाई हर ओन हिस्टोरियन्स (दिल्ली, १९८१), पृ. ८१

३. जेम्स मिल ने १८१७ में अपनी पुस्तक **'हिस्ट्री आफ द ब्रिटिश इंडिया'** तीन भागों में प्रकाशित की। १८२० में यह पुनः प्रकाशित हुई। १८२६ में इसे ही छः भागों में प्रकाशित किया गया। १८४०-४८ के दौरान यह नौ भागों में प्रकाशित की गई। १८७२ में यह दस भागों में प्रकाशित की गई। विस्तार के लिए देखें एस. सी. मित्तल, इंडिया डिस्टोरटेड ए स्टेडी ऑफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इंडिया, भाग एक (नई दिल्ली १९९५) पृ. १७-३५

४. जेम्स वेस्टपाल थाम्पसन व बर्नाड जे. होल्म. ए. **हिस्ट्री आफ हिस्टोरिकल राइटिंग्स, द एटीन एण्ड नाईनटिन्थ सेंचुरीज,** भाग दो (न्यूयार्क, संस्करण, १९६२) पृ. २९३, जान एम. राब्सन **द इम्प्रूवमेन्ट आफ मैनकांईड द सोशल एण्ड पालिटिकल थाट आफ जे. एस. मिल** (सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, १९६८) पृ. ४६

५. विस्तार के लिए देखें, थामस पिन्ने (सम्पादित) **द लैटर्स आफ टी.बी. मैकाले,** भाग तीन, (कैम्ब्रिज १९७६) पृ. ३७, ४६-४७, भाग चार पृ. २१७, बी. एन. दत्त 'मैकाले रिकन्सीडर्ड' कल्चरल फोरम (दिसम्बर 1959) पृ. 20,23, जी.ओ. टेविलियन, **लाईफ एण्ड लैटर्स आफ लार्ड मैकाले,** भाग दो, (लन्दन १८७८) पृ. १५८, २९१

६. देखें एम. के. गांधी का लेख 'मैकालेज ड्रीम्स' यंग इंडिया, भाग १०, १९ मार्च १९२८ पृ. १०३

७. सर जार्ज चैरस्ने, **इंडियन पालिटीः ए व्यू आफ एडिमिन्स्ट्रेशन इन इंडिया** (तृतीय संस्करण, लन्दन, १८९४) पृ. ३८५-३८६

८. विस्तार के लिए एस.सी. मित्तल, पूर्वोक्त, भाग दो, (नई दिल्ली, १९९६) पृ. १५६-१६०

९. सर हेनरी समरमैन, **विलेज कम्युनिटीज इन द ईस्ट एण्ड वेस्ट** (तृतीय संस्करण, लन्दन, १८७६)

१०. सर फिटगजेम्स स्टीफन, **लिबर्टी, इक्यूलटी फ्रेर्टनीटी** (प्र. स. १८७३ पुन संस्करण कैम्ब्रिज, १९६७) पृ. ८८-९०

११. सर डब्ल्यू डब्ल्यू हण्टर, **ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ द इंडियन पिपुल्स** (प्र.स. १८८२, २१वां संस्करण आक्सफोर्ड, १८९५) पृ. ३८

१२. सर जान शीले, **द एक्सपैन्शान आफ इंग्लैंड** (लन्दन १८८३) पृ. २०६

१३. सर जान स्ट्रेची, **इंडियाः ईट्स एडमिन्स्ट्रेशन एण्ड प्रोग्रेस** (प्र. सं. १८८८, हि.फ. लन्दन, १९०३) पृ. १

१४. सर अल्फ्रेड कोमा लायल, **एशियाटिक स्टेडीजः रिजीलस एण्ड सोशल** (प्र. स. १८८२, द्वि. स. लन्दन १८९९) पृ. सर अल्फ्रेड लायल, **द राइज एण्ड एक्सपेंशन आफ द ब्रिटिश डोमिनियन इन इंडिया** (लन्दन १८९४) पृ. ४-५

१५. उद्धरित पी.ई. राबर्ट, **ए हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया** (आक्सफोर्ड, MDCCCCXX) पृ. ६४८

१६. एच. एच. डोडवैल (सम्पादित) **द कैम्ब्रज हिस्ट्री आफ इंडिया, द इंडियन एम्पायर भाग ६,** (लन्दन १९३२ भारतीय संस्करण, दिल्ली १९९४) पृ. ५८४

१७. एच.एच. डोब्रवैस, **द कैम्ब्रज शोटिर हिस्ट्री आफ इंडिया** (लन्दन, १९३४) पृ. ८९४

१८. वेलनटाईन शिरिल, **इंडियन अनरेस्ट** (लन्दन, १९१०), पृ.५

१९. सर हेरिंग्टंग वर्नाय लावेट, **ए हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनलिस्ट मूवमेन्ट,** १९१९ में प्रकाशित पृ. २१४

२०. वहीं पृ. २६३-६४

२१. एडवर्ड थाम्थसन व गैरेट

२२. विस्तार के लिए वी. एन. दत्त का अध्यक्षीय भाषण (आधुनिक भाग) **भारतीय इतिहास परिषद् की कार्यवाही** (४२ वां अधिवेशन, मगध-बौधगया) १६८१ पृ. ४०२

२३. निकोलस मैंसर, लूम्बी, **द ट्रासफर आफ पावर १६४२-४७ कोन्सीट्यूसन रीलेशन्स बीटवीन ब्रिटेन एण्ड इंडिया ११** भाग, लन्दन १६७०-१६८१

२४. जान ग्लेघर, **अफ्रीका एण्ड द विक्टोरियन्स : द आफिशियल मांइड आफ द इम्पीरियलिज्म** (लन्दन, १६६१) पृ. १३-१४, २७८-७६, ४६७-४७०

२५. अनिल शील, **द इमरजेन्स आफ द इंडियन नेशनलिज्मस, कम्पीटीटर्स एण्ड कोलोबरेटर्स इन द लैटर नाईटिन्थ सेंचुरी** (कैम्ब्रज, १६६८) प्रीफेस, १३

२६. अनिल शील पूर्वोक्त, पृ. १३

२७. वहीं., पृ. १०-११

२८. वही., पृ. ११, २३

२६. सी.ऐ. बेयली, **पेटर्नस एण्ड पालिटिक्स इन नार्थन इंडिया, मार्डन ऐशियन स्टेडीज,** भाग सात, १६७३ पृ. ६८

३०. गोर्डन जानसन, **प्रोविन्सल पालिटिक्स एण्ड इंडियन नेशनिलिज्म बोम्बे एण्ड द इंडियन नेशनल कांग्रेस** (१८८०-१६१५) (कैम्ब्रज, १६७३) पृ. ५०

३१. वही., पृ. ४६

३२. वही., पृ. ७७

३३. सी.जे. बेकर, **द पालिटिक्स आफ साउथ इंडिया** (१६२०-१६३७) (कैम्ब्रेज १६७६) पृ. ८७

३४. वही., पृ. २५५

३५. वही., पृ. ३२३

३६. सी.ऐ. बेयली, **द लोकल रूट्स ऑफ इंडियन पालिटिक्स इलाहाबाद** १८८०-१६२० (आक्सफोर्ड, १६७५) साथ में उसका लेख भी देखें उपरोक्त उद्धरित पृ. ६३

३७. जूडिथ ब्राउन, **गांधी राईज टु पावर : इंडियन पालिटिक्स** (१६१५-१६२२) (कैम्ब्रज, १६७२) पृ. १७-२१

३८. जूडिय ब्राउन, **गांधी एण्ड सिविल डिसओबीडियेन्सः द महात्मा इन इंडियन पालिटिक्स** १६२८-१६३४ (कैम्ब्रज, १६७७)

३६. जूडिय ब्राउन, **मार्डन इंडिया** (आक्सफोर्ड, १६८५)

४०. बी. आर. टोमिलिनसन, **द इंडियन नेशनल कांग्रेस एण्ड द राज** (१६२६-१६४२) द पेनुलटीमेट फेज (कैम्ब्रिज १६७६)

४१. तपन राय चौधरी, **इंडियन नेशनिलिजम ऐज अनीमेल पालिटिक्स द हिस्टोरिकल जरनल,** २२,३ (१६७६) पृ. ७६०

४२. एल. नेमियर की प्रसिद्ध रचनायें है '**स्ट्रक्चर आफ पालिटिक्स एण्ड द एक्रोशन आफ नार्त्रा** तृतीय व **इंग्लैंड ऐट द ऐज आफ अमेरिकन रिव्यूलोशन**। नेमियर ब्रिटेन में प्रचलित पद्धति को संघर्ष की प्रतिक्रियाएं तथा प्रगति के आधार पर व्याख्या करती रही थी। नेमियर ने पूर्ण को छोटे-छोटे भागों में बांट कर तथा बाद में सबको जोड़कर देखने की पद्धति को चलाया।

४३. रिचर्ज गोर्डन, **नान-कोपरेशन एण्ड कांसिल इन्टरी १६१६-२०, मार्डन एशियन स्टेडीज,** भाग सात, १६७३ पृ. ४६१

४४. सी. जी. बेकर. **द पोलिटिक्स आफ साउथ इंडिया,** पृ. ७५, १२४

४५. रिचर्ड गार्डन पूर्व उद्धरित पृ. ४७१

४६. जान ग्लेघर, **कांग्रेस इन डिकलाईन : बंगाल १६३०-३५ मार्डन ऐशियन स्टेडीज** भाग सात, १६७३ पृ. २७५

४७. वही. पृ. ३२४

४८. सी.जी. बेकर, पूर्व उद्धरित पृ. ७६

४६. जान ग्लेघर, पूर्व उद्धरित, पृ. २६०

५०. विस्तार के लिए देखे एस. गोपाल का लेख, **द इंडियन इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री** में जुलाई सितम्बर १६७७ पृ. ४०५

५१. सुमित सरकार, मार्डर्न इंडिया (१८८५-१६४७) (मैकमिलन, १६८५)

५२. मैटीशन मीनेस 'इन्डडव्यजेलेटी एण्ड अचीवमैन्टस', इन 'साउथ इंडिया सोशलहिस्ट्री', **माडर्न एशियन स्टडीज,** भाग २६(१६६६) पृ. १२६

५३. वही. विस्तार के लिए पृ. १२६- १५६

५४. ओगइनी इरसथीक, **पालिटिक्स एण्ड सोशल कान्फीलिक्टस इन साउथ इण्डिया,** (बर्कले १६६६)

५५. तपन राय चौधरी, पूर्वोद्धृत पृ. ७४७-७६३

५६. ये लेख आर. पी. दत्त द्वारा एक छोटी सी भूमिका के साथ कार्ल मार्क्स आर्टिकल्स आफ इंडिया नाम से १६४० में प्रकाशित किया गया।

५७. कार्ल मार्क्स, द फ्यूचर रिगल्टस् आफ द ब्रिटिश रूल इन इंडिया, **द न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून,** २२ जुलाई १८५३

५८. विपिन चन्दर, **कार्ल मार्क्स हिज थ्योरिज आफ एन्सेन्ट सोसायटीज एण्ड कालोनियल रूल** (नयी दिल्ली, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, अप्रकाशित थीसीस) पृ. १०५-७

५६. वी. एन. दत्ता अध्यक्षीय भाषण पूर्वोक्त, पृ. ३६६

६०. ऐ. आर. देसाई, **सोशल बैकग्राउड आफ इंडियन नेशनालिज्म** (१६४८)

६१. एस. ऐ. डांगे, **इंडिया फ्राम प्रीमीटिव कम्युनिज्म टू सैलेबरी** (१६४८)

६२. डी.डी. कौशम्बी, **इन इन्टोंडेक्सन टू दी स्टेडी आफ इंडियन हिस्ट्री** (१६५६)

६३. विपन चन्दर, **द राइज एण्ड ग्रोथ आफ इकोनोमिक नेशनलिस्म इन इंडिया, इकोनोमिक पोलीसीज आफ नेशनलिस्ट लीडरशिप** १८८०-१६०५ (नई दिल्ली १६६६)

६४. सुमित सरकार, **द स्वदेशी मूवमेन्ट इन बंगाल** (१६०३-१६०८) (नई दिल्ली, १६७३) पृ. ५१२

६५. लेनिन, कलक्टेड वर्क्स भाग २०, **द राइट आफ नेशनल टू सैल्फ डिटरमीनेशन** पृ. ४११

६६. वही, भाग ३०, **ऐडरेस टू द सेकेण्ड आल एसा कांग्रेस आफ कम्युनिस्ट आर्गनाईजेशन्स आफ द पिपुल** आफ द ईस्ट पृ. १६२

६७. वही, भाग 31 **पार्लियामेन्टरी ड्राफ्ट थीसीस आन द नेशनल एण्ड द कालोनियस क्यूशन्स,** पृ. १५०-५१

६८. सुमित सरकार, **मार्क्सियन एप्रोच टू द हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनलिजम** (कलकत्ता, १६६०) पृ. ६

६६. बी. एन. ग्रोवर व यशपाल, **आधुनिक भारत का इतिहास** (नई दिल्ली १६ वां संस्करण २००१) पृ. ३२७

७०. वही. पृ. ३१७

७१. के. जी. चट्टोपाध्याय, **नाईटिन्थ सेन्चुरी सोशल रिफार्म मूवमेन्ट्स इन इंडिया : ए क्रिटीकल एप्रोच,** भारतीय इतिहास कांग्रेस को कार्यवाही (५७ वा अधिवेशन, मुद्रास, दिसम्बर २७-२६, १६६८) पृ. ४१५-४३५

७२. अयोध्या सिंह उपाध्याय **भारत का मुक्ति संग्राम** (नई दिल्ली, १६७७) पृ. २६

७३. वी. बी. ब्रोडीव, **इंडियन फिलोस्पी इन मार्डन टाईम्स** (मास्को १६८४) पृ. १४४

७४. अनिया वफे, **सोवियत स्कालर्स आन द प्राब्लम आफ इंडियन हिस्ट्री** (नई दिल्ली, सोशल साइसेज जुलाई १६६७) पृ. १००

७५. वी.ब्री. ब्रोडी. पूर्वोक्त, पृ. ३३६

७६. मोहित सेन, '**गांधी आफ्टर फ्रीडम**' इन एम. बी. राव (सम्पादित) **द महात्मा - ए मार्कसिस्ट सिम्पोजियम** (नई दिल्ली) पृ. ६१

७७. नरहरि कविराज, **गांधी नेहरू थ्रू मार्कसिस्ट आइज इन इंडियाज फ्रीडम स्ट्रगल सेवरल स्ट्रीम्स,** (सम्पादक जगन्नाथ सरकार) (कलकत्ता)

७८. आर. पी. दत्त, माडर्न इंडिया (१६४०)

७६. वही. पृ. ८०

८०. वही. पृ. ७२-७३

८१. ऐ. एम. डेकोन, **क्राईसेज आफ द कालोनियल सिस्टम** (वनडे १६५१) पृ. ३२

८२. ऐ. एम. डेकीव व आई. एम. रेस्सीनर, **द रोल आफ गांधी इन द नेशनल लिबरेशन स्ट्रगल आफ द पिपुल आफ इंडिया** सोविस्टक वेस्कोवील न. ५, १६८६ पृ. २६

८३. ई. एम. एस. नम्बूद्रीपाद, **द महात्मा एण्ड हिज इज्म** (प्र. सं. १६५० दि. प.१६६०)

८४. विस्तार के लिए देखें, एस,सी. मित्तल, **आधुनिक भारतीय इतिहास की कुछ भ्रांतियां** (हैदराबाद २००६) पृ. १४६-१५६

८५. जवाहर लाल नेहरू, **सैलेक्टेड वर्क्स आफ नेहरू** भाग चार, पृ. १६२

८६. ओ. बी. मार्टिशन, **द फालेटिक्ल न्यूज आफ जवाहर लाल नेहरू** देखे इन्टोडक्सन मास्को, १६८६ पृ. ११

८७. ओ.बी मर्टिशन, पूर्वोक्त, पृ. २११-३४७

८८. वही. पृ. ७६

८६. वही. पृ. ८०-८२

६०. देखे, **द नेशनल फ्रंट**, १६ अक्तूबर १६३८, ५ फरवरी १६३६

६१. **पिपुल्स वार**, १३ सितम्बर १६४२, ८ अगस्त १६४२ नवम्बर १६४२

६२. आर. पी. दत्त, **इंडिया टूडे** (प्रथम सं. १६४० रिप्रिंट दिल्ली, १६७०) अयोध्या सिंह उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. १२६

६३. के ऐनटोनोवा व अन्य, **ऐ हिस्ट्री आफ इंडिया**, भाग एक (मास्को 1978) पृ. ११४

६४. देखे विपन चंदर, अध्यक्षीय भाषण, **भारतीय इतिहास कांग्रेस की कार्यवाही** (१६८५ का अधिवेशन)

६५. सुमित सरकार, **द स्वदेशी मूवमेन्ट इन बंगाल** (१६०३-१६०८) नई दिल्ली, १६७३

६६. आर. पी. दत्त, **इंडिया टूडे**, पृ. ३४१-४२

६७. वही. पृ. ३५१

६८. डी.पी. सिंघल, बैटल फार द पास्ट देखे देवाहुति, प्राबल्म्स आफ हिस्ट्रीरियोग्रेफी, पृ. १५८

६६. देखें दादा भाई नौरोजी, **पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया** (1901 संस्करण); आर. सी. दत्त, **द इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इंडिया**, २ भागों में (१६०२, संस्करण)

१००. डी.पी सिंघल, पूर्वोक्त, पृ. १८६

१०१. आर. सी. मजूमदार, **हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मूवेमेन्ट इन इंडिया** (कलकता १६६२-६३) भाग एक, पृ. १२

१०२. वहीं पृ. सम्भवतः यह भारतीय इतिहासकारों के विवेचन की विडम्बना रही कि वर्णन में उन्होंने अपने प्रान्त को आवश्यकता से अधिक प्रमुखता दी। बंगाल के बारे में यह साफ दिखलाई देता है। विस्तार के लिये देखे प्रभा दीक्षित का लेख मार्डन इंडिया द बंगाल स्कूल आफ हिस्ट्री ऐ क्रीडिंग इन देखे देवाहुति (सम्पादित) **प्रावल्म आफ इंडियन हिस्टोरियोग्राफी**, पृ. १३५-१४७

१०२. विस्तार के लिए देखे बी. एन. दत्ता का अध्यक्षीय भाषण पूर्वोक्त, पृ. ३६३-३६७

१०३. ताराचन्द, **हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेंन्ट इन इंडिया** चार भागों में (दिल्ली, १६६१-७२) देखें भाग एक, पृ. XII

१०४. आर. सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, भाग एक पृ. २३६

१०५. वही. भाग एक, पृ. २२४

१०६. वही. भाग एक पृ. ३३४

१०७. रणजीत गुहा सब अल्टेन सीरीज के लेखक है। उनकी प्रमुख रचायें **ए रूल आफ प्रोपर्टी फार बंगाल** (१६३६) **इलीमेन्टरी आस्पैक्टस आफ पीजेन्ट इन्सरेक्सन इन कालोनियल इंडिया** (१६८३) **तथा ऐन इंडियन हिस्टोरियोग्रेफी आफ इंडिया, नाइटिन्थ सेंचुरी एजेन्डा एण्ड इंटस् इम्पीनीकेशन्स** (१६८८)**है।**

१०८. उपेन्द्र सिंह ने भी इस सन्दर्भ में मार्क्सवादियों की आलोचना की है। देखे उपेन्द्र सिंह, **ए हिस्ट्री आफ ऐन्सेट एण्ड अर्ली मेडिविल हिस्ट्री** (अगस्त, २००८)

१०६. वही रणजीत गुहा, **ऐन इंडियन हिस्टोरियोग्रेफी आफ इंडिया ए नाईटिन्थ सेंचुरी एजेण्डा एण्ड ईटस इम्पलीकेसन्स** (कलकत्ता, १६८८) पृ. ६८

6/1277 –ए, माधव नगर,
सहारनपुर – 247001 (उ.प्र.)

कांग्रेस और संघ
स्वराज से पूर्ण स्वातन्त्र्य तक की यात्रा

कृष्णानन्द सागर

यह सर्वविदित है कि कांग्रेस की स्थापना १८८५ में श्री ए.ओ. ह्यूम ने भारत में अंग्रेजी राज को निष्कंटक बनाए रखने के लिए की थी। श्री ह्यूम १८५७ की क्रान्ति के समय के उन चन्द अंग्रेज अधिकारियों में से थे जो अपने मुंह पर कालिख पोत कर अथवा स्त्री वेश धारण करके ही क्रान्तिकारियों के चंगुल से बच निकलने में सफल हो हुए थे। भारतीयों के रोष का तूफान उन्होंने प्रत्यक्ष देखा था। बाद में १८७२ का पंजाब का कूका-आन्दोलन तथा १८७६ का महाराष्ट्र में वासुदेव बलवन्त फड़के का विद्रोह भी उनकी आंखों के सामने से गुजरा था। इसलिये उन्होंने भारतीयों को एक ऐसा मंच प्रदान करने की योजना बनाई, जहां आकर वे अपने मन के सब गुब्बार निकाल सकें और इस प्रकार उनका असन्तोष कभी विनाशकारी तूफान का रूप ले ही न पाए। अतः तत्कालीन अंग्रेज-भक्त भारतीय बुद्धिजीवियों को लेकर श्री ह्यूम ने 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना की।

आरम्भिक वर्षों में कांग्रेस भारतीयों की कुछ सुविधाओं के लिए अंग्रेजों से याचना करने का मंच बनी रही। लेकिन बाद में लाल-बाल-पाल की तिकड़ी ने इसके स्वरूप को बदल दिया।

स्वराज अर्थात् स्वशासी ब्रिटिश उपनिवेश

१९०६ की काशी कांग्रेस में प्रथम बार 'स्वराज' शब्द का प्रयोग दादा भाई नौरोजी ने किया। लोकमान्य तिलक ने तो डंके की चोट पर कहा था – 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'।

भले ही १९०६ के कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज घोषित किया गया, किन्तु इस स्वराज और 'स्वराज्य' की परिभाषा उस शासन प्रणाली के रूप में की गई जो 'स्वशासी ब्रिटिश उपनिवेश में है'। जिसका अर्थ था- भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग रहते हुए यहां का शासन भारतीयों के हाथ में रहे। दूसरे शब्दों में इसे स्वशासन (Home Rule) या भारत को औपनिवेशिक दर्जा (Dominion Status) दिया जाना भी कहा जाता रहा है।

विशुद्ध स्वातन्त्र्य

डॉ. हेडगेवार तथा उनके समान विचार करने वालों को यह कतई स्वीकार नहीं था कि भारत इंग्लैंड का एक उपनिवेश बन कर रहे। वे किसी भी प्रकार की विदेशी सत्ता से मुक्त सर्वतन्त्र–स्वतन्त्र भारत की कल्पना करते थे। डॉ. हेडगेवार ने इसे नाम दिया विशुद्ध स्वातन्त्र्य।

मध्यप्रान्त की राजनीति के सोलह धुरन्धर महारथियों ने मिलकर 'राष्ट्रीय मण्डल' नाम से एक संस्था बना रखी थी। इसमें डा.वा.शि. मुंजे, नीलकण्ठ राव उधोजी, नारायण राव अलेकर, नारायण राव वैद्य, वै.मोरूभाऊ अभ्यंकर, गोपालराव ओपले, वै. गोविन्दराव देशमुख, डा. चोलकर,

भवानी शंकर नियोगी, डा. ना. भा. खरे, विश्वनाथराव केलकर , डा.ल.बा. परांजपे आदि थे। राष्ट्रीय मण्डल का मध्यप्रान्त कांग्रेस पर बहुत प्रभाव था। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय मण्डल जो भी निश्चित करता था, कांग्रेस उसे स्वीकार कर लेती थी।

राष्ट्रीय मण्डल के सभी लोग प्रखर देशभक्त थे और लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। किन्तु भाषा वे भी औपनिवेशिक स्वराज्य की ही बोलते थे। अतः डॉ. हेडगेवार राष्ट्रीय मण्डल से सहयोग तो करते रहे तथा आरम्भ में उसकी सभा बैठकों आदि में भी भाग लेते रहे, किन्तु मत-भिन्नता के कारण वे उसके सदस्य नहीं बने।

नागपुर नेशनल यूनियन

आखिर में राष्ट्रीय मण्डल के जो सदस्य विशुद्ध स्वातन्त्र्य के विचार से सहमत हुए, उनके सहयोग से डॉ. हेडगेवार ने 'नागपुर नेशनल यूनियन' नाम से एक नई राजनीतिक संस्था स्थापित की। इसमें विश्वनाथराव केलकर, बलवन्तराव मण्डलेकर, भैया साहब बोबड़े तथा श्री चोरघड़े आदि उनके मित्र आ गए। कुछ दिनों बाद डॉ. ना. मा. खरे भी इसमें सम्मिलित हो गए।

'नागपुर नेशनल यूनियन' विशुद्ध स्वातन्त्र्यवादियों की संस्था थी। युवा वर्ग को विशुद्ध स्वातन्त्र्य का विचार प्रथम दृष्ट्या ही जंच जाता था, इसलिये अनेक नवयुवक इसके साथ जुड़ने लगे। लेकिन यह तो स्थानीय स्तर की संस्था थी। विशुद्ध स्वातन्त्र्य सम्पूर्ण भारत के लिये था और इसके लिए अखिल भारतीय स्तर पर प्रयत्न करने की आवश्यकता थी।

कांग्रेस अखिल भारतीय संस्था थी। लेकिन उसका घोषित लक्ष्य 'स्वराज' बहुत ही संकुचित और भारतीय स्वाभिमान के प्रतिकूल था। अतः १९२० में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के अवसर पर डॉ. हेडगेवार ने कांग्रेस को उचित दिशा देने के लिए दो प्रयास अधिवेशन से पूर्व ही किये।

प्रथम प्रयास : गांधी जी से वार्ता

प्रथम प्रयास के रूप में उन्होंने बलवन्तराव मण्डलेकर आदि के सहयोग से नागपुर के व्यंकटेश नाट्य गृह में एक सभा की और उसमें विशुद्ध स्वातन्त्र्य ही हमारा उद्देश्य है, इस बात की घोषणा करने वाला एक प्रस्ताव पारित किया। कांग्रेस भी इसी प्रकार का प्रस्ताव पारित करे, यह आग्रह करने के लिए सभा की ओर से चार लोगों का एक प्रतिनिधि मण्डल गान्धी जी से जाकर मिला। गान्धी जी ने उनकी बात सुनकर केवल इतनी ही टिप्पणी की कि – 'स्वराज्य में ही विशुद्ध स्वातन्त्र्य का समावेश हो जाता है।'

डाक्टर जी को इस उत्तर से संन्तोष नहीं हुआ। एक ओर गांधी जी की उक्त टिप्पणी तथा दूसरी ओर गांधी जी सहित कांग्रेस नेताओं द्वारा औपनिवेशिक दर्जा की मांग– ये दोनों बातें परस्पर विरोधी थीं।

द्वितीय प्रयासः विषय निर्धारण समिति में

अतः उन्होंने अब स्वागत समिति के माध्यम से दूसरा प्रयास किया। स्वागत समिति की ओर से एक प्रस्ताव अधिवेशन की विषय समिति (Subjects committee) के पास भेजा गया।

प्रस्ताव में कहा गया था- ''कांग्रेस का ध्येय हिन्दुस्थान में प्रजातन्त्र की स्थापना कर पूंजीवादी देशों के चंगुल से विश्व के देशों की मुक्ति है।'' विषय समिति ने 'विश्व के देशों की मुक्ति' की कल्पना का उपहास कर के उसे अमान्य कर दिया।

कलकत्ता के 'माडर्न रिव्यू' ने मार्च १९२१ के अंक में इस बारे में लिखा था- ''उस प्रस्ताव की ओर विषय समिति द्वारा अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए था'' (The draft resolution deserved a better fate than What it met with, in the subject committee)। पत्र ने आगे इस बात पर प्रसन्नता भी व्यक्त की थी कि नागपुर की स्वागत समिति में कुछ प्रजातन्त्रवादी व्यक्ति हैं।

वह समय ऐसा था जब 'स्वातन्त्र्य' शब्द का उच्चारण करने में भी कुछ नेता घबराते थे। अतः इस प्रस्ताव में विशुद्ध स्वातन्त्र्य शब्द का प्रयोग न करके, 'विशुद्ध स्वातन्त्र्य' को परिभाषित करने वाली शब्दावली का प्रयोग किया गया इसमें दो बातें साफ थीं—

१. हिन्दुस्थान में प्रजातन्त्र की स्थापना : हिन्दुस्थान में हिन्दुस्थान के लोगों द्वारा ही चुनी हुई सरकार हो। किसी के द्वारा बलपूर्वक थोपी गई सरकार नहीं।

२. पूंजीवादी देशों के चंगुल से विश्व के देशों की मुक्ति : इंग्लैंड, फ्रांस, पुर्तगाल, हालैंड आदि पूंजीवादी देशों ने विश्व के आधे से अधिक देशों को गुलाम बना रखा था। उन गुलाम देशों को भी मुक्त कराने का काम कांग्रेस करेगी।

स्वाभाविक ही ये दोनों बातें तभी संम्भव थी जबकि हिन्दुस्थान एक सार्वभौम, सर्व प्रभुसत्ता सम्पन्न देश हो, जिसकी अपनी अर्थनीति, विदेशनीति और रक्षानीति हो। यानि जो किसी का उपनिवेश न हो। ऐसी स्थिति को ही उन्होंने प्रथम प्रस्ताव में 'विशुद्ध स्वातन्त्र्य' की संज्ञा दी थी।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कांग्रेस आन्दोलन केवल अंग्रेजों के ही विरुद्ध था जबकि इसी समय चन्द्रनगर एवं पाण्डिचेरी में फ्रांसीसी शासन था तथा गोआ, दमन व दीव में पुर्तगाली शासन था। अतः स्वागत समिति के उक्त प्रस्ताव में 'पूंजीवादी देशों' शब्दावली का प्रयोग कर के डाक्टर हेडगेवार का उद्देश्य, कांग्रेस का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट करना था कि कालान्तर में इन क्षेत्रों को फ्रांस व पुर्तगाल से मुक्त कराने का दायित्व भी कांग्रेस पर है।

डॉक्टर जी के ये दोनों प्रयास सफल नहीं हुए। किन्तु उन्होंने हार नही मानी। वे असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। असहयोग के प्रचार के लिए मध्यप्रान्त के अनेक स्थानों का उन्होंने दौरा किया। सभी स्थानों पर अपने भाषणों में वे असहयोग का अन्तिम लक्ष्य 'पूर्ण स्वातन्त्र्य' है, उसे वे अच्छी तरह प्रतिपादित करते थे। उसका परिणाम यह हुआ कि सरकार ने उनके भाषण करने पर पाबन्दी लगा दी। परन्तु डाक्टर जी उस पाबन्दी को कहां स्वीकार करने वाले थे। अतः उन पर राजद्रोह का मुकदमा ठोक दिया गया।

डॉ. हेडगेवार का मुकदमा

उन दिनों कांग्रेस जनों की पद्धति यह थी कि मुकदमा चलने पर अपना बचाव न करना तथा

सीधे अपराध स्वीकार कर लेना और जेल पहुंच जाना। किन्तु डाक्टर जी ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने मुकदमे को भी लोक-चेतना जागरण का माध्यम बनाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने बचाव के माध्यम से अदालत में ही सरकार को नंगा करने की ठान ली। उनके चार वकील मित्र उनकी पैरवी करने के लिए खड़े हो गए। अंग्रेज न्यायाधीश इससे बहुत ही असहज स्थिति में आ गया और उसने वकीलों के काम में ही अड़चने डालनी शुरू कर दी। उससे वकीलों ने अदालत का बहिष्कार कर दिया। अब डाक्टर जी ने अपनी पैरवी स्वयं ही करने का निर्णय किया।

उन्होंने अदालत में जो अपना लिखित वक्तव्य दिया, उसका एक-एक वाक्य उनके अन्दर जल रहीं पूर्ण स्वातन्त्र्य की भावना का मानों स्फुलिंग था। उन्होंने कहा कि-

१. मेरे भाषण कायदे से प्रस्थापित ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध असन्तोष, द्वेष व द्रोह उत्पन्न करने वाले तथा हिन्दी और यूरोपीय लोगों के बीच शत्रुभाव पैदा करने वाले है। मेरे ऊपर लगाए गए इस अभियोग का स्पष्टीकरण मुझ से मांगा गया है। एक भारतीय की जांच और न्यायदान के लिए एक परायी राजसता बैठे, इसे मैं अपना तथा अपने महान देश का अपमान समझता हूं।

२. हिन्दुस्थान में न्यायाधिष्ठित कोई शासन है, ऐसा मुझे नहीं लगता। तथा कोई यदि मुझे इस प्रकार की बात बताए जो मुझे आश्चर्य ही होगा। हमारे यहां आज जो कुछ है, वह तो पाशवी शक्ति के बल पर लादा हुआ भय और आंतक का साम्राज्य है। कानून उसका दास तथा न्यायालय उसके खिलौने मात्र हैं। विश्व के किसी भी भू-भाग में यदि किसी शासन को रहने का अधिकार है तो वह जनता के द्वारा, जनता के लिए तथा जनता की सरकार को है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी शासन राष्ट्रों को लूटने के लिए धूर्त लोगों द्वारा योजना पूर्वक चलाए हुए धोखेबाजी के नमूने हैं।

३. मैंने अपने देश बान्धवों में अपनी दीन-हीन मातृभूमि के प्रति उत्कट भक्तिभाव जगाने का प्रयत्न किया। मैंने उनके हृदय पर यह अंकित करने का प्रयत्न दिया कि भारत भारतवासियों का ही है। यह एक भारतीय राजद्रोह किये बिना राष्ट्रभक्ति के ये तत्व प्रतिपादित नहीं कर सकता तथा भारतीय एवं यूरोपीय लोगों में शत्रुभाव जगाए बिना वह साफ सत्य नहीं बोल सकता, यदि स्थिति इस कोटि तक पहुंच गई है तो यूरोपीय तथा, वे जो अपने को भारत सरकार कहते हैं, उन्हें सावधान हो जाना चाहिए कि अब उनके ससम्मान वापिस चले जाने की घड़ी आ गई है।

४. मेरे भाषण की टिप्पणियां पूरी तरह तथा सही नहीं ली गई, यह स्पष्ट दिख रहा है तथा जो मैंने कहा ऐसा बताया जा रहा हैं, वह मेरे भाषण का टूटा-फूटा, कुछ का कुछ तथा विपर्यस्त विवरण है। किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं। राष्ट्र-राष्ट्र के सम्बन्ध जिन मूलभूत तत्वों से निर्धारित होते हैं, उसी आधार पर ग्रेट ब्रिटेन तथा यूरोपीय लोगों के प्रति मेरा बर्ताव है। मैंने जो-जो कहा, वह अपने बन्धुओं के अधिकार तथा स्वातन्त्र्य की प्रस्थापना के लिए कहा तथा मैं अपने प्रत्येक शब्द का दायित्व लेने के लिए तैयार हूं जो मेरे ऊपर आरोपित है। उसके सम्बन्ध में यदि मैं कुछ नहीं कह सकता तो मैं उसके एक-एक अक्षर का समर्थन करने के लिए तैयार हूं तथा कहता हूं कि वह सब

न्यायोचित है। (पालकर, डॉ. हेडगेवार चरित्र पृ. ६२-६३)

प्रतिपक्षी पर सिंह के समान झपटने वाले इन शब्दों को सुनकर न्यायाधीश महोदय बोल उठे े—उनके मूल भाषण की अपेक्षा तो यह प्रतिवाद करने वाला वक्तव्य अधिक राजद्रोहात्मक है।

लिखित वक्तव्य में शायद पूरी बात स्पष्ट न हुई हो, अतः खचाखच भरे न्यायालय में बाकी कसर उन्होंने अपने भाषण से पूरी कर दी। वे बोले -

''हिन्दुस्थान हिन्दुस्थान के लोगों का ही है। अतः हमें हिन्दुस्थान में स्वराज्य चाहिए। यही बहुधा मेरे व्याख्यानों का विषय रहता है। परन्तु इतने से काम नहीं चल सकता। स्वराज्य कैसे प्राप्त करना चाहिए। यह भी लोगों को बताना होता है। नहीं तो यथा राजा तथा प्रजा के न्याय के अनुसार हमारे लोग अंग्रेजों का अनुकरण करने लगेंगे। अंग्रेज तो अपने देश के राज्य से सतुष्ट न होकर दूसरे के देश पर डाका डाल कर, वहां के लोगों को गुलाम बना कर उन पर राज्य करने को, तथा स्वयं की स्वतन्त्रता पर यदि आपत्ति आयी तो तलवार निकाल कर रक्त की नदियां बहाने को तैयार रहते हैं। यह अभी हाल के महायुद्ध से सबको पता चल चुका है। अतः हमें लोगों को बताना पड़ता है कि बन्धुओं। तुम अंग्रेजों के इस राक्षसी गुण का अनुकरण मत करना। केवल शान्ति के मार्ग से ही स्वराज्य प्राप्त करो, तथा स्वराज्य मिलने के बाद किसी दूसरे के देश पर चढ़ाई न करते हुए अपने ही देश में संतुष्ट रहो। यह बात लोगों के मन का जमाने के लिए मैं उन्हें यह तत्व भी समझाता हूं कि एक देश के लोगों का दूसरे देश के लोगों पर राज्य करना अन्याय है। उस समय प्रचलित राजनीति से सम्बन्ध आ जाता है। कारण, अपने इस प्रियतम देश का दुर्दैव से पराये अंग्रेज लोग अन्याय से राज्य कर रहे हैं, यह हमें प्रत्यक्ष दिख रहा है। वास्तव में ऐसा कोई नियम है क्या, जिसके अन्तर्गत एक देश के लोगों को दूसरे देश पर राज्य करने का अधिकार प्राप्त होता हो?

''सरकारी वकील साहब! आपसे मेरा यह प्रश्न है। क्या आप इस प्रश्न का उत्तर मुझे देंगे? क्या यह बात निसर्ग के नियम के विरुद्ध नहीं है? यदि यह तत्त्व सही है कि एक देश के लोगों को दूसरे पर राज्य का अधिकार नहीं है तो फिर हिन्दुस्थान के लोगों को अपने पैरों के नीचे दबाकर उन पर राज्य करने का अधिकार अंग्रेजों को किसने दिया? अंग्रेज लोग इस देश के नहीं है? फिर हिन्दू भूमि के लोगों को गुलाम बना कर ''हिन्दुस्थान के हम मालिक है'' ऐसा कहना न्याय का, नीति का तथा धर्म का खून नहीं है क्या?

''इग्लैंड को परतन्त्र करके उस पर राज्य करने की हमें इच्छा नहीं है। परन्तु जिस प्रकार इंग्लैंड के लोग इंग्लैंड के और जर्मनी के लोग जर्मनी में राज्य करते हैं, वैसे ही हम हिन्दुस्थान के लोग हिन्दुस्थान के स्वामी हो कर राज्य करना चाहते हैं। अंग्रेजी साम्राज्य में रहकर अंग्रेजों की दासता की सदा के लिए छाप अपने ऊपर अंकित कर लेने की हमारी इच्छा नहीं है। हमें पूर्ण स्वातन्त्र्य चाहिए तथा वह लिए बिना हम चुप नहीं बैंठेंगे। हम अपने देश में स्वतन्त्रता के साथ रहने की इच्छा करें, क्या यह नीति और विधि के विरुद्ध है? मेरा विश्वास है कि विधि नीति को पादाक्रान्त करने के लिए नहीं,

उसका संरक्षण करने के लिए होती है। यही उसका उद्देश्य होना चाहिए।

डाक्टर जी ने यह सब क्यों कहा? क्या केवल अंग्रेज न्यायाधीश और सरकारी वकील को सुनाने के लिए? इन दोनों के लिए तो उनका लिखित वक्तव्य ही पर्याप्त था, वही उनके काम आना था। फिर यह अतिरिक्त भाषण क्यों?

वास्तव में उस समय नागपुर तथा उसके आस-पास के सभी प्रमुख कांग्रेस जन न्यायालय में उपस्थित थे। डाक्टर जी ने अनायास ही एकत्रित इन सब के गले पूर्ण स्वातन्त्र्य का विचार उतारने का यह उचित अवसर समझा। अतः वे सम्बोधित तो कर रहे थे न्यायालय और सरकारी वकील को, किन्तु विषय का प्रतिपादन कर रहे थे वहां उपस्थित कांग्रेस जनों के लिये। कांग्रेस जनों की मानसिकता को देखते हुए उन्होंने अपना यह लघु भाषण आरम्भ तो किया, प्रचलित 'स्वराज्य' शब्द से और समापन किया 'पूर्ण स्वातन्त्र्य' पर। वे अपनी बात को कैसे संक्षिप्त किन्तु तर्क संगत ढंग से सीधे लोगों के हृदयों में डाल देते थे, यह भाषण इसका उदाहरण है। उन्हें एक वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड सुना दिया गया।

न्यायालय से बाहर निकले तो बाहर उपस्थित विशाल जन समूह ने उनका जोरदार जय जयकार किया। सर्वप्रथम नगर कांग्रेस की ओर से श्री रा.ज. (राम भाऊ) गोखले ने उन्हें माला पहनायी। पश्चात् बाकी लोगों ने। सर्वश्री विश्वनाथराव केलकर, डॉ. मुंजे, रामपन्त देशमुख, हरकरे, बै अभ्यंकर, समीमुल्ला खां, अलेकर, वैद्य, मण्डलेकर आदि सब उपस्थित थे।

डॉ. हेडगेवार का बचाव तथा जेल दर्शन

जेल जाने के लिए पुलिस के टांगे में बैठने से पूर्व उन्होंने फिर एक छोटा सा भाषण दिया। यह भाषण सब लोगों के लिए अत्यन्त दिशा बोधक था। वे बोले –

''राजद्रोह के इस मुकद्मे में मैंने बचाव किया। आजकल बहुतों की ऐसी धारणा हो गई है कि जो बचाव करेगा, वह देशद्रोही है। परन्तु आप इतने लोग यहां इस समय इकट्ठा हैं, इससे यह पता चलता है कि कम से कम आपकी तो यह धारणा नहीं है। अपने ऊपर मुकदमा होने के बाद अपना बचाव न करते हुए खटमल की तरह रगड़े जाना मुझे योग्य नहीं लगता। हमें प्रतिपक्ष की नीचता जगत को अवश्य दिखा देनी चाहिए। इसमें भी देश सेवा है। उलटे, बचाव न करना आत्म-घातक है। आपको पसन्द न हो तो बचाव मत कीजिए। पर बचाव करने वालों को कम योग्यता का समझना भूल होगी। देशकार्य करते हुए जेल तो क्या काले पानी जाने अथवा फांसी के तख्ते पर लटकने को भी हमें तैयार रहना चाहिए। परन्तु जेल में जाना मानो स्वर्ग है, वही स्वातन्त्र्य प्राप्ति है, इस प्रकार का भ्रम लेकर मत चलिये। केवल जेल भरने से अपने को स्वतन्त्रता अथवा स्वराज्य मिलेगा, ऐसा भी मत समझिये। जेल में न जाते हुए बाहर भी बहुत सा देश का काम किया जा सकता है, इसको ध्यान में रखिये। मैं एक वर्ष में वापिस आऊंगा। तब तब देश के हालचाल का मुझे पता नहीं लगेगा। परन्तु हिन्दुस्थान को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कराने का आन्दोलन शुरू होगा, ऐसा मुझे

विश्वास है..... ।''

इस अन्तिम वाक्य में उन्होंने स्पष्ट कहा कि वर्तमान आन्दोलन पूर्ण स्वतन्त्रता का आन्दोलन नहीं है, किन्तु भविष्य में वह अवश्य शुरू होगा, इसका विश्वास प्रकट किया। इस विदाई भाषण में उन्होंने अपना 'बचाव दर्शन' तथा 'जेल दर्शन' प्रस्तुत किया है।

यह कहने की आ.वयकता नहीं कि इसके कुछ वर्ष बाद सरदार भगतसिंह ने डाक्टर हेडगेवार के इसी 'बचाव दर्शन' का भरपूर उपयोग अपने मुकदमे में किया जिसके परिणामस्वरूप सारे देश में व्यापक जागृति की लहर फैल गई। असैम्बली बम काण्ड से पूर्व भगतसिंह डॉ. हेडगेवार से मिले भी थे।

१६ अगस्त १६२१ को डॉ. हेडगेवार कारागार पहुंच गए। डॉ. हेडगेवार जेल चले गए, लेकिन कांग्रेस के अन्दर स्वस्थ चिन्तन की एक प्रक्रिया आरम्भ कर गए। फलतः स्वराज शब्द की ढुलमुल परिभाषा के विरोध में एक लहर सी चल गई। यह लहर किस के पास कितनी पहुंची, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन १६२१ के कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में (जब डॉ. हेडगेवार जेल में थे) इसका कुछ प्रभाव देखने को मिला। राष्ट्रीय शैक्षिक एवं प्रशिक्षण परिषद् (N.C.E.R.T.) द्वारा प्रकाशित पुस्तक सभ्यता की कहानी भाग–२ (संस्करण जनवरी १६६७) के पृष्ठ ४०२ पर लेखक अर्जुन देव लिखते हैं-

''जनता की भावनाओं को इसी बात से समझा जा सकता है कि इस अधिवेशन में अनेक लोगों को स्वराज्य के नारे से संतोष नहीं हुआ, क्योंकि स्वराज्य का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता नहीं था। एक प्रमुख राष्ट्रवादी नेता और उर्दू के विख्यात कवि मौलाना हसरत मोहानी ने प्रस्ताव रखा कि स्वराज्य की परिभाषा 'सारे विदेशी नियन्त्रण से मुक्त पूर्ण स्वाधीनता' के अर्थ में की जाए। यह प्रस्ताव पारित न हो सका, पर इससे जनता की राजनीतिक चेतना में आए उभार का पता चलता है।''

डॉ. हेडगेवार १२ जुलाई १६२२ को कारागार से मुक्त हुए। उसी दिन सायंकाल को व्यंकटेशा नाट्य गृह में उनकी स्वागत सभा का आयोजन किया गया। इस स्वागत सभा की अध्यक्षता डॉ.ना.भा. खरे ने की। सभा में पं. मोतीलाल नेहरू, श्री विट्ठल भाई पटेल, हकीम अजमल खां, डॉ. अंसारी, श्री राजगोपालाचारी, श्री कस्तूरी रंगा आयंगर आदि नेता भी उपस्थित थे। वे सब कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक के लिए नागपुर आए हुए थे। सर्वप्रथम डाक्टर जी के स्वागत का प्रस्ताव रखा गया। इसके बाद पं. मोतीलाल नेहरू तथा हकीम अजमल खां के भाषण हुए। तदुपरान्त डॉ. हेडगेवार बोलने खड़े हुए। उन्होंने बहुत ही छोटा किन्तु मार्मिक भाषण दिया। उन्होंने कहा–

''एक वर्ष सरकार का मेहमान बनकर रह आने से मेरी योग्यता पहले से बढ़ी नहीं है, और यदि बढ़ी है तो उसके लिये हमें सरकार का आभार ही मानना चाहिए। देश के सम्मुख ध्येय सबसे उत्तम एवं श्रेष्ठ ही रखना चाहिए। पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कोई भी लक्ष्य अपने सम्मुख रखना उपयुक्त नहीं होगा। मार्ग कौन सा हो, इस विषय में इतिहासवेता श्रोताओं को कुछ भी कहना उनका अपमान

करना ही होगा। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते हुए मृत्यु भी आई तो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यह संघर्ष उच्च ध्येय पर दृष्टि तथा दिमाग ठण्डा रख कर ही चलाना चाहिए।'' इस प्रकार कांग्रेस कार्य समिति के सदस्यों तक भी उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय का सन्देश पहुंचा दिया।

जेल से आने के बाद डाक्टर जी प्रान्तीय कांग्रेस के सहमन्त्री नियुक्त हुए। तब तक असहयोग आन्दोलन विफल हो चुका था। एक वर्ष में स्वराज्य की बात हवा में विलीन हो चुकी थी और निराशा ने लोगों के हृदयों को आ घेरा था। ऐसे समय डाक्टर जी ने स्वातन्त्र्य के स्थायी भाव की ज्योति को जनता के अंतःकरणों में प्रज्ज्वलित करने का कार्य आरम्भ किया। इसमें उन्होंने अपनी 'नागपुर नेशनल यूनियन' को सक्रिय किया।

श्री पालकर के अनुसार ''डाक्टर जी की नागपुर नेशनल यूनियन की यह विशेषता थी कि वह पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रतिपादन करती थी। उन दिनों चाहे तो नीति के कारण और चाहे मन की वृत्ति के कारण देश के अनेक नेता साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य से आगे बढ़ कर सोचने को भी तैयार नहीं थे। सर्वोदयी नेता आचार्य दादा धर्माधिकारी बताते हैं कि उन दिनों गणेशोत्सव अथवा अन्य किसी कार्यक्रम को बुलाते समय डाक्टर जी वक्ता से स्मरणपूर्वक आग्रह करते थे कि पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय का ही प्रतिपादन किया जाए।'' (डॉ. हेडगेवार चरित्र पृ. १२६)

पूर्ण स्वातन्त्र्य श्री कल्पना का व्यापक प्रचार करने के लिये उन्होंने १६२४ में 'स्वातन्त्र्य' नाम से एक दैनिक समाचार पत्र का प्रकाशन शुरू किया। लेकिन आर्थिक कठिनाई के कारण यह पत्र अधिक देर तक नहीं चल सका। जैसे-तैसे एक वर्ष चला और १६२५ में ही बन्द कर देना पड़ा। इसके सम्पादक आरम्भ में विश्वनाथ राव केलकर रहे और वाद में अच्युतराव कोल्हटकर और फिर गोपालराव गोयले। डॉक्टर जी स्वयं भी इसमें लेख लिखते रहते थे और कभी-कभी उसका सम्पादन भी करते थे।

इस प्रकार विभिन्न विधियों तथा विभिन्न मंचों का प्रयोग वे विशुद्ध स्वातन्त्र्य के प्रचार के लिए कर रहे थे और इसका प्रभाव भी हो रहा था। लेकिन क्योंकि गांधी जी औपनिवेशिक स्वराज्य का पिण्ड नहीं छोड़ रहे थे, इसलिये शेष कांग्रेस नेताओं का भी साहस विशुद्ध स्वातन्त्र्य अथवा पूर्ण स्वातन्त्र्य को अपनाने या बोलने का नहीं हो रहा था। फिर भी यह लहर अन्दर ही अन्दर सारे देश में फैलती जा रही थी, क्योंकि डाक्टर जी प्रायः कांग्रेस अधिवेशनों में जाते रहते थे और वहां आए अन्य प्रान्तों के कांग्रेस जनों से भी इस विषय में चर्चा करते रहते थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना के बाद भी उनका यह क्रम प्रायः बना रहा।

'विशुद्ध स्वातन्त्र्य' 'पूर्ण स्वातन्त्र्य' 'पूर्ण स्वाधीनता' 'पूर्ण स्वराज्य' आदि इन सभी शब्दावलियों का एक ही हेतु था– कांग्रेस की अब तक चली आ रही ''औपनिवेशिक दर्जे' की अवधारणा को ध्वस्त करना, भारत को ब्रिटिश शासन के पंजे से पूर्णतया मुक्त करने की दिशा निर्धारित करना। अतः यह विचार उत्तरोत्तर शक्ति प्राप्त करता गया और अनेक प्रभावशली लोग

धीरे-धीरे इस मत के बनते गए।

जवाहर लाल नेहरू

दिसम्बर १९२७ चेन्नै अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू ने पूर्णस्वराज्य का प्रस्ताव रखा। उस समय गांधी वहां नहीं थे। गांधी इस प्रस्ताव को पसन्द करते है या नहीं, कोई नहीं जानता था। इसलिए किसी भी नेता ने इसके पक्ष या विपक्ष में कुछ नहीं बोला। इस प्रकार बिना विचार हुए ही प्रस्ताव पारित हुआ। प्रस्ताव के बिना विचार हुए पारित होने से जवाहर लाल जी को बड़ा दुख हुआ। यह तो पारित न होने के ही बराबर था। इसके कुछ ही दिन बाद जवाहर लाल को गांधी जी का ४ जनवरी १९२८ का लिखा पत्र मिला जिसमें लिखा था– ''तुम बहुत ही तेज जा रहे हो... तुमने जो प्रस्ताव तैयार किए और पास कराए, उनमें से अधिकांश के लिए एक साल की देर थी।'' फलतः इसके बाद ३ मई १९२८ को सुभाष चन्द्र बोस ने भी महाराष्ट्र प्रान्तीय कान्फ्रैस पूना में अपने अध्यक्षीय भाषण में 'पूर्ण स्वराज्य' का उद्घोष कर दिया।

सुभाष चन्द बोस

दिसम्बर १९२८ में कोलकाता अधिवेशन में गांधी जी ने प्रस्ताव रखा कि दिसम्बर १९२९ तक यदि ब्रिटिश सरकार भारत को 'औपनिवेशिक स्वराज्य' का दर्जा नहीं देती तो कांग्रेस एक अहिंसक असहयोग आन्दोलन शुरु कर देगी। सुभाष चन्द्र बोस ने इस प्रस्ताव में 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के स्थान पर संशोधन पेश किया कि 'कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य से कम किसी भी दर्जे से सतुष्ट न होगी'। इस संशोधन पर मतदान हुआ। संशोधन के पक्ष में ९७३ तथा विपक्ष में १३५० मत पड़े, फलतः संशोधन गिर गया। इसका सीधा अर्थ था कि तब तक कांग्रेस के ९७३ अखिल भारतीय प्रतिनिधि पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में हो चुके थे।

डॉ. हेडगेवार भी इस अधिवेशन में मध्य प्रान्त की कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य के नाते उपस्थित थे। स्वाभाविक ही उन्होंने भी इस संशोधन के पक्ष में पर्याप्त प्रयास किया होगा। सुभाष चन्द्र बोस से उसका लम्बा विचार-विमर्श भी इसी अधिवेशन के दौरान बाबा राव सावरकर की उपस्थिति में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि बहुमत इस संशोधन के पक्ष में ही था, लेकिन गांधी जी के समर्थकों ने प्रचार किया था कि यदि यह संशोधन पास हो गया तो गांधी जी कांग्रेस छोड़ देंगे। इस प्रचार के कारण दुर्बल मना कांग्रेसी संशोधन के पक्ष में खड़े होने का साहस नहीं जुटा पाए और सुभाष बोस का संशोधन गिर गया। सुभाष ने स्पष्ट आरोप लगाया था कि मतदान यदि निष्पक्षता व स्वतन्त्रता से कराया जाता तो संशोधन कदापि न गिरता। कांग्रेस के लक्ष्य के शुद्धिकरण का यह तीसरा प्रयास था।

सुभाष चन्द्र बोस और गांधी जी का मतभेद इस प्रस्ताव से ही आरम्भ हुआ था। आश्चर्य की बात तो यह है कि 'स्वराज्य में ही विशुद्ध स्वातन्त्र्य का समावेश हो जाता है', १९२० में ऐसा कहने वाले गांधीजी ने ही 'औपनिवेशिक स्वराज्य' का प्रस्ताव रखा और इतना ही नहीं, मतदान के समय

उसे निजी प्रतिष्ठा का प्रश्न भी बना लिया। इससे यह सिद्ध होता है कि 'स्वराज्य' की अवधारणा के बारे में गांधी जी स्वयं ही स्पष्ट नहीं थे।

अंग्रेजों ने भारत को 'औपनिवेशिक दर्जा' न देना था, न दिया। वे तो इसे लालीपाप के रूप में कांग्रेस नेताओं को दिखाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। एक वर्ष बीतने को आ रहा था। कलकता प्रस्ताव के अनुसार अहिंसक असहयोग आन्दोलन चलाने के सिवाय कोई चारा न था। परन्तु आन्दोलन की प्रेरणा क्या होगी? लोग आन्दोलनों में क्यों शामिल होंगे? क्या औपनिवेशिक स्वराज्य के लिये? लेकिन नई पीढ़ी तो इसके पूर्णतः विरुद्ध हो चुकी थी। पुरानी पीढ़ी के भी अधिकांश लोग इसे भारत कि लिए अपमानास्पद मानने लगे थे। महात्मा गांधी और मोतीलाल नेहरू जैसे कुछ वरिष्ठ लोग ही बचे थे, जो अभी तक इससे चिपके हुए थे। लेकिन इनके पास भी औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में और पूर्ण स्वराज्य के विरोध में कोई तर्क नहीं थे, जिन्हें वे लोगों के गले उतार सकें। इसके विपरीत 'पूर्ण स्वराज्य' अथवा 'पूर्ण स्वातन्त्र्य' कहने पर किसी तर्क की आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि वह जन-जन की स्वाभाविक आकांक्षा थी। ब्रिटेन के ताज की छत्र-छाया में रहने वाला राज्य 'स्वराज्य' कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर वरिष्ठ जन दे नहीं पाते थे। उन्हें लगने लगा कि उनकी वरिष्ठता का प्रभा-मण्डल अब सिकुड़ने लगा है, वह प्रभावहीन होता जा रहा है। अतः मजबूर होकर उन्हें अपना हठ छोड़ना पड़ा।

भगत सिंह

एक और घटना ने भी गांधी जी को अपनी धारणा बदलने के लिए बाध्य कर दिया। ८ अप्रैल १९२९ को भगत सिंह और वटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय असेम्बली में बम का धमाका कर दिया और इन्कलाब जिन्दाबाद जथा साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के नारे लगते हुए गिफ्तार हो गए। डॉ. हेडगेवार के मार्ग का अनुसरण करते हुए उन्होंने मुकदमे में अपने वचाव की रणनीति अपनाई और न्यायालय में दिये गए वक्तव्यों के माध्यम से अपने उद्देश्य व विचार धारा को जन-जन तक पहुंचाने में सफल रहे। जेल में १५ जून से २ सितम्बर तक अस्सी दिन की उनकी भूख हड़ताल ने देश में विलक्षण जागृति पैदा कर दी। बच्चे-बच्चे की जबान पर उनका नाम था। एक कवि ने उन दिनों लिखा था— हर गली कूचे में है चर्चा भगत सिंह-दत्त की। वे लोगों के हृदय-सिंहासन पर विराजमान हो चुके थे। उनकी लोकप्रियता के सामने गांधी नेहरू की लोकप्रियता बहुत फीकी पड़ चुकी थी। अपनी लोकप्रियता को पुनः स्थापित करने के लिए गांधी-नेहरू के लिए एक ही मार्ग बचा था— लीक से हट कर कोई साहसी कदम उठाने का निर्णय जोकि जन-भावनाओं के अनुकूल हो।

रावी के तट पर

परिणामस्वरूप दिसम्बर १९२९ के अन्त तथा जनवरी १९३० में पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में जो लाहौर अधिवेशन हुआ, उसमें स्वयं गांधी जी ने ही 'पूर्ण स्वतन्त्रता' का प्रस्ताव रखा, जोकि सर्व सम्मति से पारित हुआ। कांग्रेस पुनः जन-आकांक्षाओं से जुड़ गई। उस का लक्ष्य स्पष्ट हुआ।

कांग्रेस के इस लक्ष्य को निर्धारित करवाने में डॉ. हेडगेवार ने विशुद्ध स्वातन्त्र्य रूपी जो बीज डाला था, वह धीरे-धीरे वृक्ष का रूप धारण करता गया और उस वृक्ष की गहन व शीतल छाया में पूरी की पूरी कांग्रेस को बिठा देने का महत्कार्य सुभाष चन्द्र बोस ने कर दिया। गांधी जी भी जब इस वृक्ष की छाया में आकर बैठ गये तो सारे देश में हर्षोल्लास की लहर दौड़ गई। सर्वत्र नवचेतना का संचार हुआ। प्रत्येक देशवासी अब उन्नत ग्रीवा होकर चल सकता था।

स्वराज्य से पूर्ण स्वराज्य अथवा पूर्व स्वतन्त्रता तक की यह यात्र नौ वर्ष में पूरी हुई। यदि कांग्रेस १६२० में नागपुर अधिवेशन के समय ही पूर्ण स्वतन्त्रता के लक्ष्य को अपना लेती, तो देश का इतिहास कुछ और ही होगा।

३१ दिसम्बर की अर्धरात्रि को रावी के तट पर पूर्ण स्वतन्त्रता की शपथ ली गई।

स्वाभाविक ही इसकी सर्वाधिक प्रसन्नता जिसको हुई, वे थे डॉ. हेडगेवार। अतः डाक्टर जी ने सभी संघ शाखाओं को एक परिपत्र भेजा। उस में लिखा था-

इस वर्ष कांग्रेस का ध्येय 'पूर्ण स्वतन्त्रता' निश्चित हो जाने के कारण कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने घोषणा की है कि रविवार २६ जनवरी १६३० हिन्दुस्तान भर में स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया जाए। अखिल भारतीय राष्ट्रीय सभा ने अपना स्वतन्त्रता का ध्येय स्वीकार किया है, यह देखकर अपने को अत्यानन्द होना स्वाभाविक है। वह ध्येय अपने सामने रखने वाली किसी भी संस्था के साथ सहयोग करना अपना कर्तव्य है.... अतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सब शाखाएं रविवार, दिनांक २६ जनवरी १६३० को सायंकाल ठीक छः बजे अपने संघ स्थान पर शाखा के सभी स्वयंसेवकों की सभा करके राष्ट्रीय ध्वज अर्थात् भगवे झण्डे को वन्दन करें। व्याख्यान के रूप में स्वतन्त्रता की कल्पना तथा प्रत्येक को यही ध्येय अपने सामने क्यों रखना चाहिए, यह विशद करके बताएं और कांग्रेस के द्वारा स्वतन्त्रता के ध्येय का पुरस्कार करने के लिए अभिनन्दन का समारोह पूरा करें।

तदनुसार सभी संघ शाखाओं में 'स्वतन्त्रता दिवस' मनाया गया था। पोवाड़े, शोभायात्रा, व्याख्यान तथा 'श्रद्धानन्द' साप्ताहिक में से स्वतन्त्रता-विषयक लेखों का वाचन एवं 'वन्दे मातरम्' का उद्घोष आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रम इस अवसर पर हुए थे।

एफ. – 109, सैक्टर– 27
नोयडा – 201309

वीर पराक्रमी महान योद्धा : जनरल जोरावर सिंह

राकेश कुमार शर्मा

विश्व के सैन्य इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलेगा कि शत्रु पक्ष ने पराजित हुई सेना के सेनापति की स्मृति में समाधि बनाई हो। ऐसा उदाहरण केवल भारत के सैन्य इतिहास में मिलता है कि तिब्बतियों ने महान सेनानायक जरनल जोरावर सिंह के अदम्य साहस, पराक्रम व वीरता से प्रभावित हो कर उनकी स्मृति में तो-यू नामक स्थान पर उनकी समाधि बनाई जिसे ''सिंह का छोरतन'' कहा जाता है।

भारत की उत्तरी सीमाओं को सुरक्षित बनाने में ऐतिहासिक योगदान के लिए जरनल जोरावर सिंह सदा स्मरणीय रहेंगे। धर्म परायण व स्वामी भक्त, एक कुशल प्रशासक, वीर, पराक्रमी, महान योद्धा जनरल जोरावर सिंह बहुत दूरदर्शी थे। उनकी दूरदृष्टि का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्हें आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व उत्तरी सीमा से भारत को होने वाले खतरे का आभास हो गया था। अतः उन्होंने सीमा विस्तार मैदानी क्षेत्रों की तरफ करने के बजाए दुर्गम भू-भाग की ओर अपना सैन्य अभियान शुरू किया। इस महान योद्धा की वीरता के परिणाम स्वरूप लद्दाख महाराजा गुलाब सिंह के राज्य का हिस्सा बना और आज भारत का भू-भाग है। इस महान सेनानायक ने अपने सैन्य कौशल से लद्दाख, बल्तिस्तान व सुकुर्द जैसे दुर्गम क्षेत्रें को जीतकर जम्मू रियासत में १,३०,००० वर्ग कि.मी. के क्षेत्र को मिलाया था और फिर तिब्बत की ओर आगे बढ़े थे। जोरावर सिंह अपने ५,००० सैनिकों के साथ १६,००० फुट की ऊंचाई के ग्लेशियोरों को पार करके ६ दिनों में लेह पहुंचे थे। जोरावर सिंह की सेना द्वारा विजित क्षेत्र में से चीन ने १९६२ के युद्ध में लद्दाख के ३६,००० वर्ग कि.मी. भू-भाग पर कब्जा कर लिया व ६०,००० वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर यहां पाकिस्तान का नाजायज कब्जा है।

जोरावर सिंह का जन्म १३ अप्रैल, १७८६ ई. को चन्द्रवंशी राजपूत हरजे सिंह ठाकुर के घर गांव अन्सरा, मौजा हथोल, त. नादौन, जिला हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश) में हुआ। उनके पिता कहलूर (बिलासपुर) रियासत के दरबारी थे। गांव में भूमि विवाद को लेकर झगड़े के कारण वे घर छोड़ कर हरिद्वार चले गए। लाहौर के शासक रणजीत सिंह व कांगड़ा में महाराजा संसार चन्द की सेनाओं में सेवा करने के बाद वे जम्मू चले गए। वहां पर उनकी भेंट महाराजा गुलाब सिंह से हुई।

महाराजा गुलाब सिंह ने उन्हें अपनी सेवा में लिया। इस सम्बन्ध में एक अन्य प्रसंग यह भी बतलाया जाता है कि जोरावर सिंह अन्सरा से हरिद्वार चले गए। वहां पर उनकी भेंट राणा जसंवत सिंह से हुई जो कि जम्मू में मरमट गलियां के जागीरदार थे। समभाषाई होने के कारण वे परस्पर बहुत घुलमिल गए और राणा ने जोरावर सिंह के सामने जम्मू चलने का प्रस्ताव रखा जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। अतः १८०२ में जोरावर सिंह जम्मू पहुंच गये। मरमट गलियां में इन्होंने एक योगी से योग व आयुध विद्या ग्रहण की। बाद में वे राणा की नौकरी छोड़ कर जम्मू की ओर आए। वहां पर तवी नदी के किनारे राजा गुलाब सिंह से उनकी भेंट हुई। तब जोरावर सिंह राजा की सेवा में आ गए। राजा ने इन्हें किलों में राशन वितरण का कार्य सौंपा। एक वर्ष में एक लाख रूपये की बचत करने पर वे राजा के चेहते बन गए।

उनकी प्रतिभा से प्रभावित हो कर १८१७ ई0 में राजा ने रियासी क्षेत्र का प्रबन्ध उन्हें सौंपा। १८२२ ई. में उन्हें बजीर की पदवी से नवाजा व सेना में प्रबन्धन का अधिकार प्रदान किया। तत्पश्चात् किश्तवाड़ का गवर्नर नियुक्त किया। उन्होंने जुलाई, १८३४ ई0 में ५००० सैनिकों के साथ किश्तवाड़ के रास्ते आगे बढ़ते हुए सुरू व सोड़ के किलों को अपने अधीन किया। उन्होंने लद्दाख के राजा ग्यालयो त्सेपाल नामग्याल से लेह की संधि कर ५०,००० रुपया जुर्माना वसूला व २०,००० रू. वार्षिक कर देने के लिए मजबूर किया। इन्होंने चतरगढ़ पर चढ़ाई की और उसे जीत कर उसका नाम गुलाबगढ़ रखा। १८४० ई. तक इन्होंने पूरा लद्दाख क्षेत्र जम्मू रियासत से मिला दिया। इसी दौरान वल्तिस्तान को अपने अधीन किया। जोरावर सिंह की यह नीति रही है कि जिन क्षेत्रों को उन्होंने जम्मू रियासत के साथ मिलाया, उन क्षेत्रों में अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। ताकि उनका सहयोग प्राप्त किया जा सके व विद्रोह की सम्भावना न रहे। मई १८४१ ई0 में जोरावर सिंह तिब्बत विजय के लिए निकले। ५००० योग्य प्रशिक्षित सैनिकों को लेकर लेह से आगे बढ़ते हुए ताशीगोंज व हानले को पार करके रूडोक व गारो को अपने अधीन किया। अब उन्होंने अपनी सेना में जोश भरा कि हम धार्मिक स्थल मानसरोवर झील व कैलास पर्वत को अपने क्षेत्राधिकार में लाने के बिल्कुल नजदीक है। अतः वे सतर्कता, निपुणता व साहस के साथ आगे बढ़ें। जोरावर ने मानसरोवर व राक्षसताल के समीप हुए युद्ध में शत्रु सेना को कड़ी पराजय दी।

उसके बाद तकलाकोट में जब जोरावर सिंह व उसकी सेना प्राकृतिक परिस्थितियों से जूझ रही थी तो तिब्बतियों ने अचानक हमला बोल दिया। जोरावर सिंह की सेना में २००० सैनिक थे जबकि ल्हासा की फौज १०,००० से अधिक थी। १० दिसम्बर १८४१ ई0 को जोरावर सिंह तो-यू के

निकट तिब्बतियों की सेना से भिड़ गए। अभी निर्णायक लड़ाई चल रही थी कि १२ दिसम्बर १८४१ ई. को इस वीर सपूत को गोली लग गई। तब भी अदम्य वीरता व साहस का परिचय देते हुए वे तलवार से लड़ते रहे। तभी एक भाला पीछे से उन्हें लगा। शत्रुओं ने उन्हें घेर लिया और उन्हें शहादत प्राप्त हुई। जोरावर सिंह की वीरता व योग्यता से प्रभावित होकर तिब्बतियों ने तो-यू नामक स्थान पर उनकी समाधि बनाई जिसको सिंह का छोरतन कहा जाता है। आज भी इस समाधि के अवशेष वहां पर है।

जोरावर सिंह की उपलब्धियां आधुनिक भारत के सैन्य इतिहास में अनोखी है। जोरावर सिंह के सम्बन्ध में इतिहासकार के एम. पणिक्कर ने लिखा है कि लद्दाख और बल्तिस्तान की बर्फ से ढकी चोटियों में समुद्रतल से १५,००० फुट से भी अधिक ऊंचाई पर जहां हवा इतनी कम है कि मैदानों में रहने वालों को सांस लेने में कठिनाई होने लगती है, वहां एक दो बार नहीं बल्कि छः सैन्य अभियान पर जाना एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है। एक के बाद एक अनेक अभियानों से किसी देश पर जीत हासिल करना और उसे अपना ही शान्तिपूर्ण प्रान्त बना लेना एक ऐसा कार्य है जिसका कोई और उदाहरण भारतीय इतिहास में नहीं है। भारतीय सीमाओं के वीर प्रहरी के रूप में जोरावर सिंह का नाम सदैव स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाएगा। आज आवश्यकता है कि हम भारत के इस वीर सपूत के साहसिक कार्यों की गाथा को प्रत्येक भारतवासी तक पहुंचायें ताकि राष्ट्रभक्तों एवं वीरों की परम्परा सदैव ज्वलन्त रहे।

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
जनरल जोरावर सिंह महाविद्यालय,
धनेटा, जिला –हमीरपुर (हि0प्र0)

कृषि दर्शन

कुलुई की कृषि व्यावसायिक शब्दावली - २

मौलू राम ठाकुर

यहां विचारणीय विषय यह है कि क्या रियाटा में बीज बोने का सम्बन्ध अंग्रेजी कहावत as you sow, so shall you reap अथवा हिन्दी मुहाबरा 'जैसा बोओगे वैसा काटोगे' से है और इसे मात्र पहाड़ी में कहा गया है या इसका कोई भिन्न प्रयोजन है। दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। अंग्रेजी अथवा हिन्दी कहावतों का संबंध मात्र बीज बोने और फसल काटने तक का है। इस में अन्न बीजने और उसमें खाद डालने और निडाई करने के अतिरिक्त ज़मीनदार की कोई भूमिका नहीं है, परन्तु रियाटे की स्थिति में 'ओरी' के लिए हल जोतने से ले कर धान के काटने और उसके भंडारण तक न केवल उसके परिश्रम और मेहनत की आवश्यकता है, अपितु उसकी योग्यता, सूझ-बूझ और लग्न की भी परीक्षा होती है। रियाटे में बीज बोना, उसमें समय-समय पर पानी डालना, निडाई करना, ओरी को कीट-कीटाणुओं से बचाना, उसे उसकी मूल भूमि से जड़ के साथ जुदा करना, कहीं दूसरे स्थान पर पुनः रोपित करना, नई जगह नई परिस्थिति से उसे जीवित रखना आदि-आदि अनेकों तरह के शारीरिक तथा मानसिक बल के काम जमीनदार को करने पड़ते हैं। सारांश यह कि कहावतों का ज़मीनदार भाग्यवादी है। वह भारतीय संस्कारों की छाया में पला ''कर्म बीजसंस्कारं तन्निमित सृष्टि'' सिद्धान्तों की पूंछ पकड़े अन्तिम क्षण तक आशातीत रहता है और इधर भगवान का पूर्ण भक्त दिन-रात प्रभु का स्मरण करता हुआ अपने कठोर परिश्रम, सख्त मेहनत और कड़े प्रयत्नों की बदौलत सत्यनिष्ठा, सद्‌भावना, सदाचार के मार्ग पर चलता हुआ पूरी श्रद्धा, सम्मान और आस्था के साथ सफलता की कामना के लिए भगवान की शरण में जाता है। वह भाग्य और भगवान के अन्तर को भली प्रकार जानता है। भाग्य में जो कुछ लिखा या निर्धारित है वह हो के रहेगा उसे कोई बदल नहीं सकता – परन्तु सर्वशक्तिमान भगवान विश्वव्यापकता-एवम्-त्रिकालदर्शिता के फलस्वरूप सब कुछ कर सकता है; मात्र उसको पहचानने और प्रसन्न करने का सामर्थ्य होना चाहिए। यदि परिश्रम, योग्यता, ईमानदारी, दियानतदारी करने पर भी उलटे परिणाम सामने आ जाए तो हैरानी तो होगी ही। तब कुल्लू के लोगों के पास उस तीर्थ-यात्री का उत्तर तो है ही जिसके मणिकर्ण में कोई गेहूं के सिड्डु खा कर जौ के रख गया था, तो उसको कहना था कि 'मणिकरणा- तेरी शरणा/ गेहूं- रे भरणा/ ज़ौ- रे तरणा/ कि ता तौ शुकणा/ कि ता मूं मरणा।

'कुलुई की कृषि व्यावसायिक शब्दावली' विषय शृंखला की प्रथम किस्त 'इतिहास दिवाकर' के चैत्र, कलियुगाब्द ५११६ (अप्रैल २०१४) के अंक में प्रकाशित हुई है।

बेंथ : बालश्ति। कुलुई में यह शब्द परिमाणवाचक विशेषण है जो माप को प्रदर्शित करता है। इसका अन्तर खुले और चौड़े किए हुए हाथ के अंगूठे के सिरे से लेकर कनिष्ठिका के सिरे तक की लम्बाई है। यह संस्कृत शब्द वितस्ति का तद्भव रूप है, यथा- वितस्ति > बितत्ति > बिअथ > बेत्थ > बेंथ। माप के लिए बेंथ का प्रयोग आज भी सर्वाधिक होता है। लोक साहित्य में भी इसका प्रचलन है ''बेंथ एक छोकरू मुंडा पांधे टोकरू''।

पैंदल/पेंइदल : यह भी परिमाणवाचक विशेषण है और माप का प्रतिपादक है। कुलुई में चार अंगुलियों तक की लम्बाई को अंगुलियों की गिनती द्वारा दिखाया जाता है। लम्बाई-चौड़ाई की इससे अधिक दूरी को चार अंगुलियों और अंगूठे के सहयोग से अर्थात् पांच दलों द्वारा दिखाया जाता है तथा पांच+द्ल < पंचद्ल > पैंद्ल रूप द्वारा व्युत्पति सिद्ध हो जाती है।

हौळ : संस्कृत अथवा हिन्दी हल का तद्भव रूप। कुलुई में मध्य अर्ध-विवृत 'अ' को पश्च अर्ध विवृत ऑ में बदलने की प्रवृत्ति है, यथा अग्नि > ऑग, डर > डॉर, सप्त > सॉत आदि। मूल रूप से कुलुई हल के दो भाग होते है; इसका अग्र भाग 'शांज' कहलाता है जो आगे की ओर को गोल होता जाता है और जिसके अगले सिरे पर प्रायः तीन, एक के पीछे दूसरा, छेद होते हैं, जिन में से लोहे या मजबूत लकड़ी की कील डाल दी जाती है ताकि बैलों के कंधों पर 'जूं' (जुआ) टिका रहे। जहां बैलों का कद ऊंचा और लम्बा हो तो कीली को सब से आगे के छेद में से गुजारते हैं। मंझले और छोटे कद के बैलों की स्थिति में क्रमशः दूसरे और तीसरे छेद काम में लाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त बेउड़ पर हल चलाते समय हमेशा सबसे आगे की कीली का प्रयोग करना पड़ता है, अन्यथा क्योंकि बैल बहुत आगे तक नहीं जाते और इसलिए बेउड़ खाली रह जाती है। शांज की सीधी लम्बाई लगभग दो मीटर होती है। इसके आधे भाग से ही इसके पीछे की ओर की मोटाई बढ़नी आरम्भ होती है और चारों कोने भी उभरने लगते हैं और भीतर के अंश तक इसका पिछला भाग लगभग एक बेंथ कुछ टेढ़ा होता है जो गोल न हो कर चौरस होता है और उसे हल के दूसरे भाग जिसे हौळ कहते हैं, में से गुजार देते हैं। हौळ बान, मोहरू, खुमानी आदि किसी भी मज़बूत लकड़ी का बन सकता है, परन्तु शांज केवल खौरशु वृक्ष की ही प्रायः बनती है जो दस हजार फुट की ऊंचाई पर ही उगता है। हौळ तिकोनी- सी शकल का कुन्दा होता है जो पीछे की ओर काफी चौड़ा और मोटा होता है परन्तु आगे की ओर को पतला और बारीक होता जाता है। उसका अगला सिरा तेज सूए जैसा रह जाता है। इसी उभरी हुई धार को ऊपर से तराश कर और इसे तेज निहाण से खोद कर उसमें लगभग एक फुट लंबा और आध इंच वर्गाकार के लुहाळ अर्थात् लोहे के फाल को चढ़ा देते हैं। लुहाळ का सिरा और हौळ का मुख एक-दूसरे के साथ सटे होने के कारण खेत की जमीन को फाड़ने का काम करते हैं।

भरयाल : यह ऋतु १६ आषाढ़ से १५ भादों तक रहती है और देश के अनेक भागों में भी इस समय को बरसात के रूप में माना जाता है, परन्तु कुल्लू में यह मौसम बड़ी अनिश्चितता से भरा होता है। कभी तो इतनी वर्षा होती है कि ढलानदार खेतों के ढेक टूट कर इस कदर बह जाते हैं कि बाद में

ज़मीनदारों को इन्हें सुधारने में कई महीने लग जाते हैं। कई बार वर्षा इतनी कम होती है कि बीजी फ़सल भी बरबाद हो जाती है। कुछ भी हो कुल्लू के लोगों को भरयाल का मौसम बहुत पसन्द आता है। इसीलिए लोकोक्ति प्रसिद्ध है -

हिऊदं रुखा, बासत भुखा
हाह केर मेरे भरलायके सुखा

हिऊंद शब्द सं. हेमंत का तद्भव रूप है और दोनों का अर्थ भी समान है। शिशिर, हिम और शीतकाल होने के कारण इस ऋतु का रूखा होना इसकी विशेषता है। जाड़े को लेकर वसंत तक एक लम्बे समय में पहाड़ों के लोगों ने घर के अन्दर बैठे-बैठे सब कुछ खा-पी लिया होता है इसलिए इस समय को भूखा कहना स्वाभाविक है। ऐसी सूरत में आराम का समय है, खरीफ की फसल की कटाई समाप्त हो गई होती है और रबी की फसल अभी कच्ची होती है। इसी कारण श्रावण का पूरे-का-पूरा महीना शाउणी-जाच अथवा काहिका मेला-उत्सवों के लिए सुरक्षित है। कुल्लू भर में दशहरा के बाद काहिका का मेला सर्वाधिक लोकप्रिय और अनेक तरह के लोकानुष्ठानों के लिए प्रसिद्ध है। इस पर सविस्तार चर्चा मेला-त्यौहार शीर्षक के अन्तर्गत हो जाएगी, यहां मात्र छिदरा अनुष्ठान का विवेचन जरूरी है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध किसान और जमीनदारों से है। छिदरा के आयोजन से देवता तथा सभी लोगों को पाप से मुक्ति दिलाई जाती है।

छिदरा : यह शब्द संस्कृत शब्द 'छिद्र' का तद्भव रूप है और यहां भाव यह है कि दैनिक क्रियाकलापों तथा व्यस्त कार्य के बीच मानव के आचरण तथा स्वभाव में जो छिद्र या अभाव पड़ गया है या अनायास पाप कमाया है उससे मुक्ति। सामाजिक नियमों के उल्लघंन से या सांस्कारिक विधियों के अनानुपालन से अथवा व्यक्तिगत स्वभाव के दोष से जो कुकर्म या पाप कमाया है उससे मोक्ष की प्राप्ति छिदरा का मूल उद्देश्य है, और यह मुक्ति दिलाता है नड़ या नौड़। छिदरा के लिए दूसरा शब्द 'छौल भौरना' है।

छौल : निकट बैठे हुए के खुले आगे बढ़ाए हुए हाथों में नौड़ जौ फैंकता है और अन्य लोगों को चारों ओर फैंकता है और कहता है-

पाप-कुकर्म केरी रे होले ता छिद्रा होआ सा (सभी कहेंगे....छिदरा); दोष-खोट कामोइरा होला ता छिदरा हौआ सा (सभी कहते हैं....छिदरा) गऔ, बौछू, कुत्तो, बराले मारेदे होले ता छिदरा हौआ सा; एईब-बुराई कमोइरी होली ता छिदरा हौआ सा (सभी उपस्थित कहेंगे....छिदरा) आदि।

किसी के प्रति बुरा काम किया हो तो उससे भी उसे मुक्त किया जाता है। किसी ने नौड़ को बताया हो कि उसने फलां किस्म का कोई अपराध किया है तो वह उससे भी उसे मुक्ति दिला देता है, आदि। इस तरह नौड़ जब हर किसी के कुकर्म द्वारा कमाए गए पाप की गठड़ी को अपने सिर पर बांध लेता है तो इसके बाद वह मर जाएगा, क्योंकि मौत ही तो मोक्ष है। उस को मारना और मार कर पुनः जीवित करना देवता-विशेष की जिम्मेवारी है। यदि देवता उसे पुनः जीवित कराने में सफल नहीं होता

तो उसे शिरढ़ के काली नाग की तरह नौड़ परिवार के पालन-पोषण की जिम्मेवारी लेनी पड़ती है। काली नाग को आज तक शिरढ़ में हर तीसरे वर्ष प्रायश्चित के रूप में काहिका करना पड़ता है। नौड़ - परिवार को १३ भार चावल और ७ भर सत्तु देने पड़ते हैं और एक नौड़न को प्रत्येक काहिका पर कपड़े दिए जाते हैं।

भरयाल ऋतु से सम्बन्धित काहिका और उस में छिदरा का आयोजन तो आज तक पूर्ववत् चला आ रहा है, क्योंकि मानव काम करेगा, गलतियां करेगा, पाप होगा तो छिदरा भी करना पड़ेगा। परन्तु आज भी भरयाल के दिन आराम और बेकार के दिन हों, ऐसा नहीं है। विपरीत इसके, यह ऋतु न केवल बड़े वरन् छोटे जमीनदारों और श्रमिकों के लिए भी काम और दाम देती है। शीघ्र पकने वाली सेब की किस्मों के सेब की तुड़ाई और ढुलाई साफलोद्यान शीर्षक के अन्तर्गत दिया जाएगा; यहां मात्र सामान्य संदर्भ देना उचित है। ज्यों-ज्यों बाल्ह और निहुल में पौधे लगाने शुरू कर दिए हैं, भरयाल का मौसम जो कभी बेकार के दिनों के लिए प्रसिद्ध था, वह खूब कमाई का समय हो गया है। सेबों का काम अब वर्ष भर का काम हो गया है। मध्य जून से सेब की तुड़ाई का काम शुरू हो जाता है। बागीचे से सड़क तक सेब को ढोने वाला साधारण श्रमिक ही हजारों रुपये कमाता है। सेब-तुड़ाई के काम में सावधानी बरतनी पड़ती है। ग्रेडिंग का काम भी तकनीकी है। सभी कामों में अच्छी कमाई कर लेते हैं। इसी समय लहुसन की फसल भी पक जाती है जो आज-कल सबसे अधिक कीमती फसल मानी जा रही है। इसी बीच फूल-गोभी मई के तीसरे सप्ताह से बीजना आरम्भ करते हैं और वह सितम्बर के अंत तक तैयार हो जाती है। कुल्लू के जमीनदार सभी दृष्टि से एक आत्म-निर्भर और आत्म-पर्याप्त किसान है। उसके पास भूमि है, भेड़-बकरियां है, गाय-बैल हैं। भले ही वह सूखे चारा के लिए घास नहीं उगाता है। क्योंकि उसके पास भूमि की कमी है; परन्तु उसके पास सीधे ढलानदार स्पाट पहाड़ हैं जिन पर कोई अन्न तो बोया नहीं जा सकता लेकिन जिन पर बढ़िया किस्म का बाझा, नीरु आदि घास हमेशा उगा रहता है जो चारे के लिए अत्यन्त लाभदायक होते हैं। ऐसे हरे-भरे घास के क्षेत्रें को फाट, घासणी, खरयात्र आदि कहते हैं। रिवाज-ए-आम पशुपालक पुहालों को ऐसे फाटों आदि पर भादों महीने के अन्त तक भेड़े चराने की आज्ञा नहीं देते तथा पूरे भादों के महीने में लोग इन घासणियों के घास को काटते हैं, सुखाते हैं और टुंहक लगा कर सर्दियों के लिए मजबूती रखते हैं। टुंहक या टुंहका शब्द सं. स्तंभक का तद्भव रूप है जो १५-१६ फुट लंबा ऐसा खंभा है जिसे मजबूती के साथ जमीन पर खड़ा गाड़ दिया जाता है और जिसके गिरद बाझा घास को ऊपर सिरे तक इस तरह से संजोया जाता है कि घास न तो सड़ता है और न ही उसकी हरियाली समाप्त होती है। इसे सर्दियों में चारा के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा फालतू घास अच्छे दामों में बिक जाता है।

शौयर : शौयर ऋतु १६ भाद्रपद से आरम्भ हो कर १४ कार्तिक तक अपना प्रभाव दिखाती है। इसका प्रथम सप्ताह ही बड़ा उपयोगी तथा उत्साहवर्धक है। स्थानीय लोक-विश्वास और आस्थाओं के अनुसार २० भादों को बड़ा मंगलप्रद तथा शुभाशीष माना जाता है। उन दिनों पहाड़ों का वातावरण

बड़ा रमणीक और सुरम्य होता है। जड़ी-बूटियां भरपूर यौवन में होती है। विपदा असह्य रोग से पीड़ित व्यक्ति महाजनी, मोजग, मझाट आदि पर्वत शिखरों पर आ कर सो जाया करते हैं क्योंकि २० भादों को वे शिखर-पूजन और ओसबिन्दु सेवन के शुभ-मुहूर्त पर प्रातः उठते ही प्रायः पीठ के पीछे से हरी घास पर हाथ मार कर ओस बटोरते हैं। प्रातः ही पौ फटने से पूर्व से लेकर जब तक उनके हाथों में ओस आती रहे, लोग दूर-दूर तक घास-पौधों पर हाथ मारते तथा ओस का सेवन करते हैं। हिमालय के इन पर्वत शिखरों पर जीवनदायिनी और कष्ट एवम् रोग-विनाशिनी जड़ी-बूटियां और वन औषधियां पाई जाती हैं परन्तु आज-कल किसी को उनकी पहचान अथवा ज्ञान नहीं है, इसलिए जिस किसी भाग्यशाली के हाथ ये लग जाएं तो वह कष्टों से मुक्ति पा लेता है। बांझपन से मुक्ति तथा कुष्ट रोग से छुटकारा पाना अनेकों उदाहरण देखने को मिलते हैं।

सूर : जमीन का कोई भी बड़ा काम सहयोग के बिना पूरा करना सम्भव नहीं है और कुलुई ग्रामीण समाज में ऐसा सहयोग पैसों से खरीदा नहीं जा सकता। इसे मात्र एक जुआर (सहकार रूप में सहायता) नामक प्राचीन परम्परा को सूर नामक पेय के माध्यम से तरो-ताजा रखा गया है। सूर वैदिक सुरा का अवशेष है जिसके कारण १९६२-६३ तक जमीनदारों को आबकारी तथा कराधान विभाग हिमाचल प्रदेश से अनेक बार सजाएं भुगतनी पड़ी है। जुआर के लिए भी विभाग से सूर लगाने हेतु पट्टे प्राप्त करने पड़ते थे। उस वर्ष एक न्यायालय ने जमीनदारों को बहुत बड़ी राहत दिलाई है, यह निर्णय दे कर कि ''सूर'' शराब नहीं है क्योंकि सूर के निर्माण में किसी भी चरण में इनके आसवन की जरूरत नहीं पड़ती है।

इसी सूर के सम्बन्ध में २० भादों का भी विशेष उपबन्ध है। सूर के निर्माण में दो प्रकार की पद्धतियों का समावेश रहता है। औषधि-प्रक्रिया तथा सूर-निर्माण-प्रक्रिया। औषधि, वास्तव में, सौ से अधिक जड़ी-बूटियों का मिश्रण है जिसे लोग ढेली कहते हैं। इन जड़ी-बूटियों को बीस भादों के दिन ही प्रातः भूखे पेट एकत्रित करना होता है तथा इन्हें वही आदमी एकत्रित कर सकता है जिसे इनकी पहचान हो। ऐसे बहुत कम जानकार हैं जिन्हें इन जड़ी-बूटियों की पहचान होती है। आज कल अधिकतम साठ जड़ी-बूटियों के जानकार ही रह गए हैं। गांव के ऐसे विशेषज्ञ के पास अब तक उन सभी लोगों के उतने जौ के सतु पहुंच चुके होंगे जितने की वे ढेली बनाना चाहते हैं। ढेली शब्द पहाड़ी भाषा का स्त्रीलिंग एकवचन शब्द है जो इसी रूप में प्रयुक्त होता है। ईकारांन्त स्त्रीलिंग होने के कारण इसका बहुवचन में रूप नहीं बदलता। यद्यपि इसका पुल्लिंग रूप ढेला बन सकता है, परन्तु तब यह इस संदर्भ में अपना मूल अर्थ छोड़ देगा तब इस का अर्थ होगा किसी गुड़, मिट्टी, आटा आदि का छोटा टुकड़ा या छोटी टुकड़ी। इस प्रकार का साधारण शब्द ढेला के लिंग-विधान में परिवर्तन के फलस्वरूप ढेली शब्द में जो शिष्टता और विलक्षणता आई वह, यों ही संयोग, इतिफाक या आकस्मिक रूप से नहीं आई; वरन् वे भावनाएं और परिस्थितियां क्रियाशील और कर्मनिष्ठ रहीं हैं जिनके अन्तर्गत उस

प्राचीन समय में वेदों की कुछ विशिष्ट परम्पराएं आज हम तक पहुंची हैं। यह प्रसन्नता का विषय है कि जब वैदिक सुरा हम तक सूर नाम से पहुंची है तो इस की मुख्य औषधि का 'ढेली' नाम भी इतना ही पुराना है जितना पुराना कुल्लू का समाज है। इससे यह स्पष्ट है कि ढेली शब्द सार्थक शब्द है और इसके नामकरण में इसके परिवेश की प्रमुख भूमिका रही है। क्योंकि उन्हीं दिनों ढेला-चौथ अर्थात् भादों सुदी चौथ का चद्रंमा देखना निषिद्ध है और यदि कोई देख ले तो दोष निवारणार्थ लोग दूसरों के घर पर पत्थर का ढेला मारते हैं।

ढेली औषधि निर्माण : ढेला मारने की उपर्युक्त परम्परा ढेली तैयार करते समय भी निभाई जाती है। बीस भादों की पूर्व संध्या तक ढेली निर्माता को अपेक्षित ढेली की मात्रा का पता लग जाता है। वह उसी के अनुसार जड़ी बूटियों को इकट्ठा करने लग जाता है। ६० में से कुछ एक जड़ी बूटियों के नाम इस प्रकार है- नकटीशी (नाक काटती हुई गंध), गुड़ला बड़ा (चौड़े पते, पीले फूल, जड़े आदि सभी गुड जैसी मिठास वाला होता है), गुड़ला छोटा (छोटे लबूतरे पते; शेष पूर्व की तरह); बराघा-रा-जौफा (पौधे और जड़ों की शक्ल एक जैसी बाघ के पंजे की तरह); बकर-शिंघी (सीधा लंबा पौधा सिर पर बकरे के सींग की तरह पीला मरोड़दार फूल) आदि ६० जड़ीबूटियों को, मटोशल नामक जड़ी बूटी को छोड़ कर, पहले बारीक काट कर और फिर किसी बड़ी ओखली में डाल कर मूसल द्वारा बारीक कूटा जाता है; प्राप्त हुए भूने जौ के आटे को किसी बड़े से कमरे के फर्श पर या खौळ (खलिहान) के पत्थर के चक्कों पर उंडेल देते हैं। कूटी हुई औषधियों को छान कर उस आटे के साथ मिला देते हैं। उस घोल में मधु-मक्खी, मकड़ी, घरेलू मक्खी और तिलचटा की बलियां भी डाली जाती है। इसके बाद इस मिश्रण को गूंथ कर विशेष विधि से सूर तैयार करने की औषधि ढेली तैयार कर दी जाती है।

अध्यक्ष,
देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम
देवप्रस्थ भवन, ढालपुर, कुल्लू (हि0प्र0)

हरियाणा की लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार

राम शरण युयुत्सु

मानव और प्रकृति का साहचर्य अति प्राचीन है। जब मानव ने इस धरती पर आंखें खोली तो उसने अपने चारों ओर प्रकृति का विराट वैभव विखरा हुआ पाया। वन-उपवन, वृक्ष-लताएं, पशु-पक्षी एवं पर्वत, नदियों के रूप में बहुरंगी छटा के दर्शन पाए। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही है कि मानव जीवन की संस्कृति, सभ्यता और साहित्य में प्रकृति के परिवेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हरियाणा प्रान्त हरि नारायण विष्णु की प्रिय भूमि है। यह भगवान् श्री कृष्ण की लीला स्थली रही है। आज से पांच हजार वर्ष पहले द्वापर युग में हरियाणा प्रान्त के कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत का भीषण संग्राम हुआ था। कुरुक्षेत्र के तीर्थों में सन्निहित सरोवर एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। वामन पुराण में कुरुक्षेत्र के अन्य तीर्थों के साथ सन्निहित सरोवर का विशेष माहात्म्य वर्णित है। सत्युग में भी सह सरोवर इसी नाम से था-

कृते युगे सन्निहित्यम्। [१]

योगीश्वर ब्रह्मा ने सृष्टि रचना की इच्छा से और भगवान् विष्णुहरि ने जगत् के पालन की कामना से इस सरोवर का आश्रय लिया था। इसी प्रकार सरोवर के मध्य में प्रवेश कर महात्मा रुद्र ने भी इस तीर्थ का सेवन किया जिससे महातेजस्वी हर-हर शिव को स्थाणुत्व (स्थिरत्व) प्राप्त हुआ-

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेना योगिना।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम्।।
रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना।
सेव्यं तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः।। [२]

हरियाणा के अन्य जनपदों में भी भारत के सनातन धर्म-संस्कृति के अनेक प्रसिद्ध स्थान हैं। जीन्द जनपद के प्रतिष्ठित कवि, लेखक एवं चिन्तक स्वर्गीय पं. राम अवतार 'अभिलाषी' का एक ठोस उलाहना रहा है कि मनुष्य का ठिकाना बनने वाला जयन्त नगरी (जीन्द) का यह क्षेत्र इतिहास लेखकों एवं पुरातत्त्ववेत्ताओं की पकड़ में क्यों नहीं आया। उन्होंने भाषा विभाग, हरियाणा, चण्डीगढ़ द्वारा जन साहित्य, मासिक के दिसम्बर १६७६ के पृष्ठ ५६ पर प्रकाशित लेख, 'जीन्द नगर की एक झांकी' में लिखा है कि एक जनश्रुति के अनुसार इसी क्षेत्र में मानव सृष्टि का आरम्भ हुआ है।

वैदिक और पौराणिक परम्पराओं से अलंकृत हरियाणा की लोक परम्परा में सृष्टि रचना का विचार हमारे ऋषि मुनियों के सनातन चिन्तन पर ही आधारित है। कहा जाता है कि शेष शैय्या पर

महाप्रलय की निद्रा में लीन हरि नारायण विष्णु जब जाग उठे तो उनके नाभि कमल से ब्रह्मा जी पैदा हुए। नाभि कमल पर आसन लगा कर ब्रह्मा ने वेदों का विचार किया और वेद प्रचार की आशा के साथ सृष्टि रचना का कार्य आरम्भ किया। जगत् पिता ने विधिपूर्वक जगत् की रचना की। अग्नि, आकाश, पवन, और जल की सृष्टि करके धरती का निर्माण किया। परमात्मा ने जगत् रचना को जड़ और चेतन दो भागों में बांटा और चेतन संसार में सब से श्रेष्ठ रचना मनुष्य की हुई। आकाश, जल और धरती में अनेक जीवों का वास कारवाया। सूर्य और चन्द्रमा की चाल को देखें तो कोई शक नहीं रहता कि जगती का संचालन प्रभु के अनुशासित नियमों के अधीन हो रहा है। भगवान की यह पवित्र रंग-रंगीली रचना है। हरियाणा प्रान्त में प्रचलित विभिन्न भजनों में प्रभु की सृष्टि रचना के भाव निम्नलिखित रूप में उपलब्ध होते हैं-

ब्रह्मा जी ने करी तपस्या, नाभ कमल में आसन मार।
भनक पड़ी वेदों की वाणी, सोच समझ कर किया विचार।
रची सृष्टि ब्रह्मा जी ने, वेदों का होगा प्रचार।। [४]
जगत पिता नै जगत रचाया, कोए जगत विधि से वरणी।
अगन गगन और पवन जल से पीछै निपजी धरणी।। [५]
जड़ और चेतन दो भागों में जग रचना को बांटा गया।
चेतन जग में सर्वश्रेष्ठ फिर मानुष तन को छांटा गया।
नभ में जल में थल में, जीवों का निवास है।
जगती का संचालन करना, नियम, किसी का खास है।
मत कर शक, ध्यान से लख, चाल राशि और भान की।
कितनी पवित्र चित्र विचित्र रचना है भगवान की।। [६]

कहते हैं कि यह धरती एक बैल पर टिकी है। सामान्य रूप से इस बात को स्वीकार करना कठिन है। इसलिए लोक मानस के मन में कई प्रश्न उभरते हैं। एक भजन में ईश्वर की अलौकिक माया रचना जिसे मनुष्य की समझ नहीं पकड़ पाती, के सम्बन्ध में पहेली की भांन्ति प्रश्नवाचक शैली में पूछा गया है-

मैं पूछूं संत जी पहलां गऊ हुई थी कै बैल?
गऊ हुई थी कै बैल जल सुन्न तै ऊपर कै नीचै?
कहां टेके पैर धरती जब नहीं थी व्हां कै?
जल सुन्न चीर बैल आया कहां कै?
चार दिसा का बोझ धरया सिर ऊपर व्हां कै?

अर्थात् सन्त जी हमारा पहला प्रश्न है कि पहले गाय हुई या बैल हुआ? जल और शून्य (आकाश) के ऊपर या नीचे गाय और बैल कहां हुए? जब धरती नहीं थी, तब उन्होंने अपने पैर कहां टिकाये। वह बैल जल और आकाश के बीच से निकल कर कहां से आया और धरती की चारों दिशाओं का बोझ उसने अपने सिर पर धारण किया।

हरियाणा के शुकदेवमुनि स्वरूप लोक कवि पंडित लखमी चन्द सृष्टि करतार की कारीगरी से आश्चर्यचकित हो कर कहते हैं-

बिन आधार ब्रह्माण्ड लटकै,
झूल्ले कूण झुलावै सै।
बड़ी भूल भुलैया लावै सै,
न्यू भेद पटण ना पाया। [८]

तात्पर्य यह है कि यह ब्रह्माण्ड बिना आधार के जैसे अधर में लटका हुआ है। मनुष्य परमात्मा की इस अनूठी रचना के भूल-भुलैया मैं खोया हुआ है। इस अलौकिक रहस्य को खोज पाना, मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर है।

इस प्रकार सृष्टि रचना के अनन्त रहस्य अभेद्य है। इसीलिए ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में प्रजापति परमेष्ठी ऋषि का कहना है कि इस सृष्टि की उत्पत्ति और विस्तार जिसके द्वारा हुआ, वह इसे धारण किए हुए है या यह बिना किसी आधार के ही है? यह सब कुछ परमाकाश में रहने वाले परब्रह्म परमेश्वर ही जानते हैं या हो सकता है कि वह भी न जानते हों-

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।। [९]

सृष्टि का रहस्य कितना गूढ़ है? इसका आकलन इस मंत्र से हो जाता है। ऋषि का दर्शन है कि सम्भवतः सृष्टि का सम्पूर्ण रहस्य इसके निर्माता को भी ज्ञात न हो। निस्संदेह निर्माता को सम्पूर्ण रहस्य ज्ञात होता है, लेकिन ऋषि ने सृष्टि रहस्यों की अत्यन्त गूढ़ता प्रदर्शित करने के लिए ऐसा कहा है।

तथापि ऋषियों ने इस गूढ़ रहस्यमय सृष्टि विज्ञान का जितना साक्षात्कार किया, उसका वर्णन वेद, पुराण आदि शास्त्र ग्रन्थों में उपलब्ध है। इसकी जानकारी लोक परम्परा में भी व्याप्त है। लोक आंचलों में इसकी प्रस्तुति आंचलिक विशेषताओं के साथ समृद्ध रूप में प्रचलित है।

सन्दर्भ :

१. वामन पुराण, अध्याय ४५, श्लोक २६।
२. वामन पुराण, अध्याय २२, श्लोक ५६,५७।
३. भारतीय संस्कृति दर्शन एवं सभ्यता, सम्पादित, श्री अंगिरा शोध संस्थान, जीन्द (हरियाणा), पृष्ठ ६६।
४. कैम्बोंवाला सिंहतीर्थ, रामकुमार शर्मा, भजनीक, वीरभान, भजन पृष्ठ ३६।
५. प. लखमी चन्द ग्रन्थावली, डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, पृष्ठ ७६४-७६८।
६. भीष्म भजन प्रकाश, प्रथम भाग, मुकाम घरौण्डा, जिला करनाल।
७. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ. शंकर लाल यादव, हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद, पृष्ठ २११-२१२।
८. पं. लखमी चन्द के काव्य में रहस्यवादः तुलनात्मक संदर्भ, डॉ. राजेन्द्र गौतम, हरिगन्धा पत्रिका, सितम्बर-अक्तूबर १९९१, हरियाण साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, पृष्ठ ५५।
९. ऋग्वेद-मण्डल १०, सूक्त १२९, मंत्र ७।

श्री अंगिरा शोध संस्थान
419/3, शक्ति नगर, पटियाला चौंक,
जीन्द– 126102 (हरियाणा)

ईश्वर गीत में सृष्टि रचना

विद्या सागर नेगी

हिमाचल प्रदो में जनजातीय क्षेत्र ज़िला किन्नौर की लोक संस्कृति में सृष्टि रचना से सम्बन्धित अनेक लोक गाथाएं प्रचलित हैं। इन गाथाओं को ईश्वरस गीथङ् अर्थात् ईश्वर गीत कहा जाता है। ये ईश्वर गीत सामान्य गीत नहीं हैं। इनका गायन केवल मनोरंजन के लिए नहीं होता। लेकिन इनके गायन और श्रवण में श्रद्धा भक्ति का भाव रहता है। ईश्वर गीत का एक स्वरूप यहां प्रस्तुत है-

मूल रूप	हिन्दी रूपान्तर
बोलाहा सतिये जुगे,	**कहते हैं सत्युग में,**
सतीये जुगे ॐ कारी जो राज़ा।	**सत्युग में ॐकार राजा (भगवान)।**
बोलाहा ॐकारा जे,	**कहते हैं ॐकार,**
सुनचान्दो लागो।	**सोचने लगा।**
ॐकारा जे सुनचान्दो लागो,	**ॐकार सोचने लगा,**
सुची-सुची सिरापोरी ओशा,	**सोच-सोचकर सिर पर पसीना पड़ा,**
सोए ओशिए तालाबु भोरो।	**उसी पसीने से तालाब भरा।**
तालाबु माजी शेफे ज़ोरिङा,	**उस तालाब के बीच बुलबुला घूमने लगा,**
शेफे फुटी अण्डो ज़ोरिङा,	**बुलबुला फटने से निकला अण्डा घूमने लगा,**
अण्डो फुटी ईशुरा मादेव जाया।	**अण्डा फटा तो ईश्वर महादेव पैदा हुए।**
हुन्दी दुन्दी उबी शङ्कार।	**नीचे धुन्ध ऊपर पत्थरीला।**
बोलाह सोंची-सोंची अपु मादेव।	**कहते हैं स्वयं महादेव के सोचते-सोचते,**
एकुले कनारे,	**एक ओर ,**
मुठी बिते कुदबुदा कोरा,	**मुट्ठी के अन्दर हिलजुल होने लगी,**
दखणी मुठी का विष्णु नारेणा,	**दाई मुट्ठी से विष्णु नारायण,**
बावें मुठी का ब्रह्मा ज़ाओ।	**बाई मुट्ठी से ब्रह्मा ने जन्म लिया।**
अपु माज़ी गोला शे बाता,	**अपने बीच बातचीत करने लगे,**
मतालोके न्यारहुओ गूरा।	**मर्त्यलोक में घोर अन्धकार है।**

न्यारोगुरे किन कोरी प्याशो?
दाखणी न्यानेका चन्दीरा ज़ाओ।
बावें न्यानेका सुरीज़ा ज़ाओ।
हिक या कुशी नौ लोखी तारे।
तेवे कोरी न्यारगू रो प्याशो।
बोलन्दो लागो मामुआ,
हुन्दिरा क्या करूं में।
मातालोके मणु नाही माया।
ब्रह्मा-विष्णु चाणादो लागो,
सुनेरो मनुषा।
सुनेरो माणुरो काना बी न लिखो,
सुनेरो माणु धारापोरी शे छाड़ो,

बेदी-बेदी सुनांदो नाही।
तेबे चाणीला रूपके रो माणुसा,
सोए माणुरो बी काना ना लिखो,
बेदी-बेदी सुनांदो नाही।
तेबे चाणीला ताम्बे रो माणुसा,
ताम्बे रो माणुरो बी काना ना लिखो,
ताम्बे रो माणुरो धारापोरी शे छाड़ो।
बेदी-बेदी सुनांदो नाही।
तेबे चाणीला कांसू केरो माणुसा,
कांसे रो माणुरा काना बी लिखो,
कांसे रो माणुरो धारा पोरी शे छाड़ो,
कंसे रो माणु शुणांदो लागो,
सोए माणु कांसू केरो राज़ो।
चाणीला छारगारू लो माणुसा।
सोए माणुरो काना बी लिखो।
छारगारू माणुरो धारापोरी शे छाड़ो।
छरगारू माणु शुणांदो लागो।

इस घोर अन्धकार से कैसे प्रकाश होगा?
दाईं आँख से चान्द पैदा हुआ,
बाईं आँख से सूर्य पैदा हआ,
छाती पौंछ कर नौ लाख तारे,
तब किया अन्धकार से प्रकाश।
बोलने लगा मामा,
अब क्या करूं मैं।
मर्त्यलोक में मनुष्य और सम्पत्ति नहीं है।
ब्रह्मा-विष्णु बनाने लगे,
सोने का मनुष्य।
सोने के आदमी का कान नहीं बनाया,
सोने के आदमी को धार के पीछे (पहाड़ की ओट में) छोड़ा,
बुला-बुला कर सुनता नहीं।
तब चांदी का आदमी बनाया,
उस आदमी का भी कान नहीं बनाया,
बुला-बुलाकर भी नहीं सुनता।
तब बनाया तांबे का आदमी,
तांबे के आदमी का भी कान नहीं बनाया,
तांबे के आदमी को धार के पीछे छोड़ा,
बुला-बुलाकर भी सुनता नहीं।
तब बनाया कांसे का आदमी,
कांसे के आदमी का कान भी बनाया,
कांसे के आदमी को धार के पीछे छोड़ा,
कांसे का आदमी सुनने लगा,
वह आदमी कांसू नाम का राजा,
राख और कोयले का आदमी बनाया।
उस आदमी का कान भी बनाया,
राख-कोयला से बने आदमी को धार के पीछे छोड़ा।
राख-कोयला से बना आदमी सुनने लगा,

तोले ज़पड़ी दोआरो।	तुझे यम लोक का द्वार है।
तोले हो ग्वल्टी बोरी ज़ुखेर।	तुझे दामन भर लकड़ी।
बोलाह ब्रह्मा विष्णु बोलान्दो लागो,	कहते हैं ब्रह्मा-विष्णु कहने लगे,
मातालोके अन्न नाहीं पाणी।	मर्त्यलोक में अन्न-पानी नहीं है।
अपु माज़ी गोलाशे बाता,	आपस में गल-बात करने लगे,
ओ मामूआ हुनरी रा क्या करूं मैं,	हे मामा! हुनर क्या करूं मैं,
हुनरी रा करी हरि संसारा।	भगवान ने हुनर करके संसार बसाया।
बोड़ो फिरो तू बासाकू नागा,	बासुकी नाग तू बड़ा हो गया,
पेरो कोरी पाताल टासो,	पैर से पाताल में डाल दिया,
शिरे कोरी आकाश तोलो।	सिर के बल पर आकाश को उठा दिया।
तेबे कोरी वोन्दो लागो,	तब बीजने लगा,
बोन्दो लागो विष्णु नारेणा।	बीजने लगा विष्णु नारायण।
सेरा माटी हरिओ संसारा।	एक सेर मिट्टी से हरि का संसार।
बोन्दो लागो पोण-पाणी रो जोगा,	बीजने लगे हवा-पानी के लिए,
बोन्दो लागो विष्णु नारेणा।	बीजने लगे विष्णु नारायण।
बोन्दो लागो औणा शा दोणा।	बीजने लगे अन्न-धान्य।
मातालोके बूटी नाहीं ज़ाटी,	मर्त्यलोक में जड़ी-बूटी नहीं है,
बोन्दो लागो ब्रह्मा-विष्णु,	बीजने लगे ब्रह्मा-विष्णु,
शोको बोइओ होरो ज़ायाऊं।	सूखा बीज बीजकर हरी-भरी जड़ी-बूटी पैदा की।
सोच़न्दो लागो ब्रह्मा-विष्णु,	सोचने लगे, ब्रह्मा-विष्णु,
माता लोके चीरू नाहीं पखेरू,	मर्त्यलोक में चिड़िया-पखेरू (पंख वाले जीव) नहीं है,
च़ाणेलाओ चीरू पखेरू,	बनाने लगे चिड़िया-पखेरू ,
मातालोके धोण नाहीं चाणा,	मर्त्यलोक में धौण (पशुधन) नहीं बनाया,
च़ाणेलाओ धोण मातालोके,	मर्त्यलोक में पशुधन बनाया।
ला मातालोगे ओरी ले दीना।	इस मर्त्यलोक में दूसरों को दिया,
ओरी ले दीनो छतराज़ा।	दूसरों को दिया छत्रराज।
बुंद बी ना अपुले जागो।	अपने लिए कुछ भी नहीं रखा।
बोला बारह बोर्षे अपुले मैं बुंद बी ना जागो।	कहते हैं, बारह वर्ष तक मैंने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा।
गेरू ज़ात्रे मेरो जाणीयो जाणो।	मेले में मालानृत्य करते मुझे जाना गया।

गेरू ज़ात्रे चोमियो ज़िन्दे,	मालानृत्य में चंवर के साथ संजीव नाच करते,
हुआ गेरू जात्रे चोंगिए वी ना छाडू।	मेले में धुरी या धुरी का चंवर कभी नहीं छोडूगा।
तिन्दे हुआं नौ लाखी दोजा।	वहां नौ लाख ध्वजाएँ हुई।
तिन्दे हुए पञ्च भाई पाण्डुए।	वहां पांच पाण्डव भाई हुए।
तिन्दे हुए साधु-पण्डिता।	वहां हुए साधु-पण्डित।
तिन्दे हुए नरज़ी नारेणा।	वहां हुए नर-नारायण।
तिन्दे हुए राम भाई लखिमा।	वहां हुए राम, भाई लक्ष्मण।
तिन्दे हुए त्रोन भाई इशुरा।	वहां हुए तीन भाई (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) ईश्वर।
तिन्दे हुआ गेरू मेरू जातुरे।	वहां धूम-धाम वाला मेला हुआ।
तिन्दे हुआ तुरो बाज़ा ईशुरा।	वहां तूरी बाजा अर्थात् संगीत भगवान् साक्षात् हुआ।
महादेवा धुरी गारा विष्णु नारेणा।	महादेव ने विष्णु नारायण को सबसे आगे धुरी में रखा।

बौद्ध विद्या केन्द्र,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
समरहिल, शिमला– 171005

लाहौल के घुरे में सृष्टि रचना

डॉ. सूरत ठाकुर

लाहौल-स्पीति हिमाचल प्रदेश का एक विस्तृत भू-भाग में फैला सीमावर्ती जनजातीय जिला है। इस जिला के लाहौल सम्भाग में घुरे गीतों का प्रचलन बहुत है। घुरे गीतों में किसी विशेष विषय, घटना, एवं व्यक्ति के कथानक का चित्रण होता है। वास्तव में लोक गाथाओं को ही यहां घुरे कहा जाता है। एक घुरे गीत में महादेव द्वारा सृष्टि रचना में पृथ्वी और मानव सृष्टि की रचना का वर्णन मिलता है। जो कि इस प्रकार है।

मूल रूप	हिन्दी रूपान्तर
जला थला हे।	**पूरी तरह जल ही जल था।**
जला कुंभी भूयी जीयो।	**पूरी धरती जैसे जल – कुम्भ में समायी थी।**
ईशरो महादेवो क्या ए दोरे कीती?	**ईश्वर महादेव ने क्या काम किया?**
जला ऊपरुए महादेवो रिशी री जीयो।	**जल से महादेव ने पृथ्वी निकाली।**
तेता ऊपरुए कन्या कुमारी जीयो।	**उसके बाद एक कुवांरी कन्या पैदा की।**
तेता ऊपरुए गुगला तांबे जीयो।	**उसके बाद गूगल और तांबा पैदा किया।**
तेता ऊपरुए बैलाना बाछी जीयो।	**उसके बाद बैल का बछड़ा पैदा किया।**
तेता ऊपरुए तांबे री धरती जीयो।	**उसके बाद तांबा की धरती पैदा की**
तेता ऊपरुए संगली संसार जीयो।	**उसके बाद सारा संसार पैदा किया।**
ईशुरो महोदवो क्या ए दोरे कीती?	**ईश्वर महादेव ने क्या काम किया?**
सोना खाई रे री मणसागाा डाही जीयो।	**सोना घिसकर मनुष्य बनाया।**
दूरा जाई ए हाका लागी देने जीयो।	**दूर जाकर उसे आवाज दी।**
न कीती हुईयें न की अंगारे जीयो।	**उसने न तो हां की और न ही हलचल हुई।**
रूपे खाई रे री मणसागा डाही जीयो।	**चांदी घिसकर मनुष्य बनाया।**
दूरा जाई ए हाका लागी देने जीयो।	**दूर जाकर उसे आवाज दी गई।**
न कीती हुईयें न की अंगारे जीयो।	**उसने न तो हां की और न ही हलचल हुई।**
कांसे खाई रे री मणसागा डाही जीयो।	**कांसा घिसकर मनुष्य बनाया।**
दूरा जाई ए हाका लागी देने जीयो।	**दूर जाकर उसे आवाज दी गई।**

न कीती हुईयें न की अंगारे जीयो।	उसने न तो हां की और न ही हलचल हुई।
तांबे खाई रे री मणसागा डाही जीयो।	तांबा घिसकर मनुष्य बनाया।
दूरा जाई ए हाका लागी देने जीयो।	दूर जाकर उसे आवाज दी गई।
न कीती हुईयें न की अंगारे जीयो।	उसने न तो हां की और न ही हलचल हुई।
लोहे खाई रे री मणसागा डाही जीयो।	लोहा घिसकर मनुष्य बनाया।
दूरा जाई ए हाका लागी देने जीयो।	दूर जाकर उसे आवाज दी।
न कीती हुईयें न की अंगारे जीयो।	उसने न तो हां की और न ही कोई हलचल हुई।
ईशुरा महादेवे गोबू रा ढोई जीयो।	ईश्वर महादेव ने गोबर का उपला बनाया।
गोबरा ढोईये धूणी रा गाही जीयो।	गोबर के उपले में आग की धूनी लगाई।
धूणी जागाई छार बणाई जीयो।	उसी जलाई धूनी से राख बनाई।
छारा खाईये रा मणसागा डाही जीयो।	राख से मनुष्य बनाया।
दूरा जाईए हाका लागी देणे जीयो।	दूर जाकर आवाज दी।
कीती हुईयें की अंगारे जीयो।	उसने हां की और उस में हलचल हुई।
ईशुरो महादेवे मणसागा रचाही जीयो।	ईश्वर महादेव ने मनुष्य की रचना की।
ईशुरो महादेवे पृथ्वी रचाही जीयो।	ईश्वर महादेव ने पृथ्वी की रचना की।

प्राध्यापक, संगीत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, कुल्लू (हि.प्र.)
पिन कोड – 175101